जैन भारती

अगस्त 2014 • वर्ष 62 • अंक 8 • वार्षिक ₹ 200

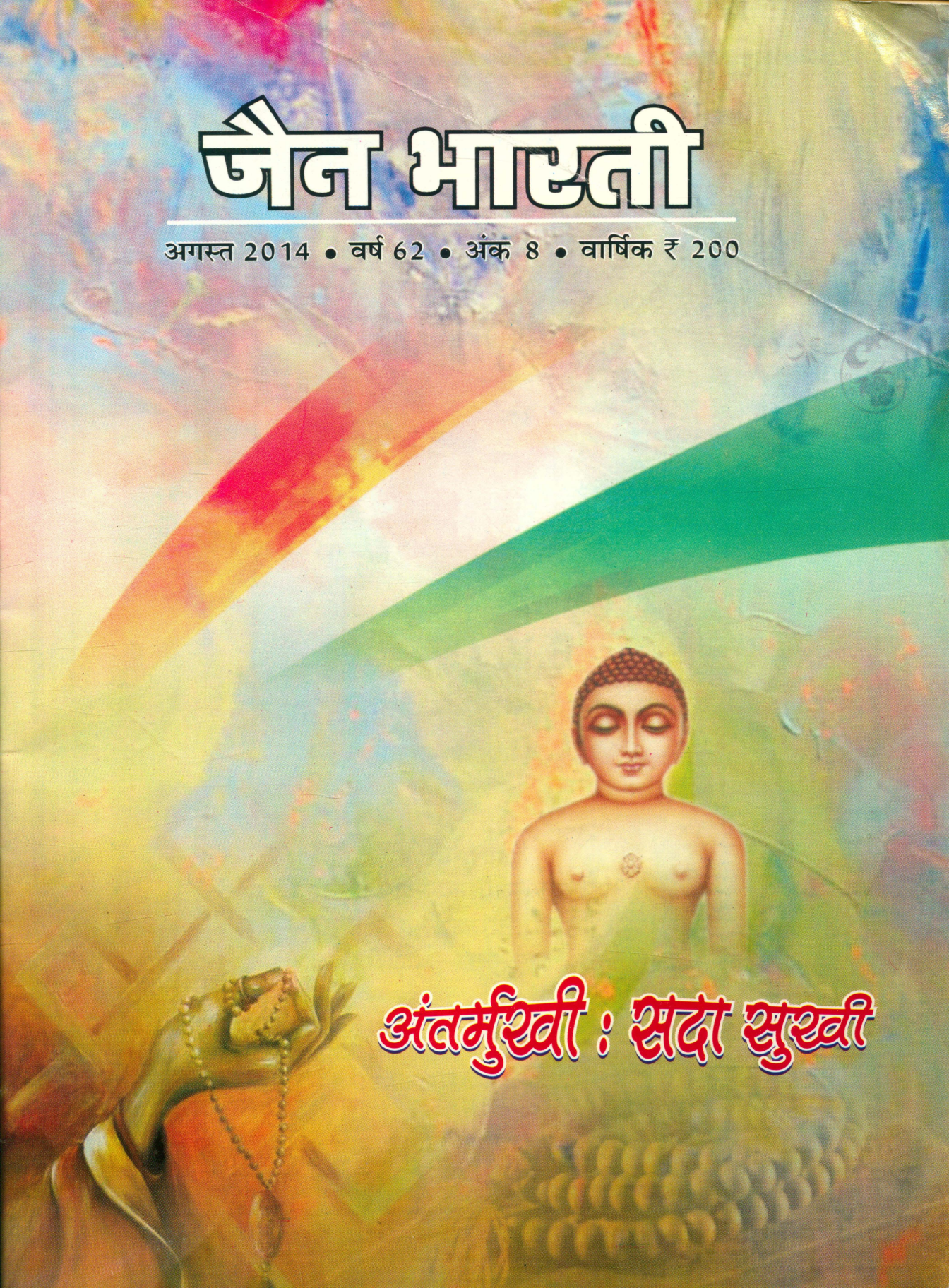

अंतर्मुखी : सदा सुखी

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

B.N. GROUP

स्व. श्री बच्छराजजी-रतनीदेवी नाहटा

की पुण्य स्मृति में

शासनसेवी

बिमल-सुशीला, संदीप-मीता

सलोनी, प्रियंक, सांची नाहटा

सरदारशहर-गुवाहाटी

KAMAKHYA UMANANDA BHAWAN
A.T. ROAD, GUWAHATI 781001 (ASSAM)

जैन भारती

वर्ष 62 • अगस्त 2014 • अंक 8

•
संपादक
डॉ. शान्ता जैन

•
आवरण
गौरीशंकर

अनुक्रम

1.	संपादकीय		5
2.	समाधान की खोज में	–आचार्य महाप्रज्ञ	7
3.	अध्यात्म विकास के सूत्र	–आचार्य महाश्रमण	11
4.	आत्म-मंथन का पर्व	–आचार्य तुलसी	13
5.	वसुधैव कुटुम्बकम्	–आचार्य तुलसी	15
6.	नेतृत्व की कसौटियां	–आचार्य तुलसी	16
7.	एकलव्य बनने की विवशता क्यों?		17
8.	उजालों की ओर	–समणी सत्यप्रज्ञा	19
9.	स्वतंत्रता ने स्व-तंत्र को जगा दिया		20
10.	सूर्य संबोधि का	–साध्वी शुभप्रभा	21
11.	स्वतंत्रता–मूल्यों को धुंधलाने का दौर	–ललित गर्ग	23
12.	रसेश्वर कृष्ण	–पं. अक्षयचन्द्र शर्मा	25
13.	'क्षमा' देती है तनाव से राहत	–छत्रसिंह बच्छावत	30
14.	अन्तर्मुखी : सदा सुखी	–आचार्य महाप्रज्ञ	31
15.	अपराधी के प्रति करुणा	–श्री भद्रगुप्तविजयजी गणीवर	35
16.	धर्म की समग्र यात्रा : पर्युषण आराधना	–साध्वी राजीमती	38
17.	श्रेष्ठ कौन	–अमोलकचंद जैन	41
18.	स्वास्थ्य-प्रतिबोध	–गुरुदेव तुलसी	43
19.	कहानी उत्कर्ष और अपकर्ष की	–साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	45
20.	अहिंसा	–हरिवल्लभ बोहरा 'हरि'	48
21.	रक्षा बंधन : परंपरा का निर्वाह.....	–पदमचन्द पटावरी	51
22.	चींटी और उसका दर्शन	–संकलन	53
23.	साध्वी विशद चेतनाश्री को नमन	–समणी नियोजिका ऋजुप्रज्ञा	55
24.	एक सवाल खुद से		57

संपादकीय संपर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन-महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए
* Contact us at: jainbharatitms@gmail.com

स्वतंत्रता आत्मानुशासन का फलित है

- चिंतन और आचरण की स्वच्छंदता ने लोगों को अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं नैतिक मूल्यों से दूर धकेल दिया है।
- राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्र का अर्थ होता है–राष्ट्रीय संविधान द्वारा संचालित जीवन–यात्रा।
- बलवती भावना, प्रशस्त इच्छा या जागृत विवेक से जो काम होता है, वह मनुष्य की स्वतंत्र चेतना की प्रेरणा है।
- परतंत्रता का सही बोध और स्वतंत्र बनने की गहरी तड़प–ये दोनों बातें जब तक नहीं होती, स्वतंत्रता नहीं मिल पाती।
- स्वतंत्रता में पर–नियंत्रण का अभाव होता है न कि स्वच्छंदता और उच्छृंखलता का आविर्भाव।
- स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिकों को निश्चिंतता और सुरक्षा भी प्राप्त न हो, उस स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या है?
- यदि विदेशी हुकूमत चले जाने मात्र से स्वतंत्रता मिलती तो आज जन–जीवन में जुआ, चोरी, भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी जैसी दुर्गुणों की गुलामी नहीं होती।
- असमानता, अस्पृश्यता, जातीयता, सांप्रदायिकता का भेदभाव मिटे बिना स्वतंत्रता का पूर्ण लाभ मिलना कठिन है।
- अध्यात्म का अभाव, अर्थ की प्रधानता और मौलिक चिंतन की कमी–इन तीन बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित किया जाए तो देश की अखंडता और स्वतंत्रता सार्थक हो सकती है तथा उसके भविष्य को स्थिरता दी जा सकती है।
- स्वतंत्रता के नाम पर उच्छृंखल मनोवृत्तियों को प्रोत्साहन देना स्वतंत्रता का अवमूल्यन करना है।
- श्रमशील और व्यसनमुक्त नागरिक ही स्वतंत्रता का वास्तविक आनंद प्राप्त कर सकता है।

सबके लिए मैं क्यों जीऊं

जीवन के चौराहे पर खड़ा होकर कोई यह सोचे कि मैं सबके लिए क्यों जीऊं? तो यह स्वार्थ-चेतना अनेक बुराइयों को आमंत्रण देगी, क्योंकि व्यक्ति सिर्फ व्यक्ति नहीं है, वह परिवार, समाज और देश के निजी दायित्वों से भी जुड़ा हुआ है।

अपने लिए जीने का मतलब है सिर्फ अपने सुख की तलाश। जीवन और आजीविका के बीच संघर्ष में सुलगता आदमी औरों के लिए जीने का संकल्प कैसे लेगा? क्यों लेगा? वैयक्तिक स्वार्थ की सोच ने आज मनुष्य-मन की सोच को बहुत बौना बना दिया है। वह सोचता है–जहां, जब, जो भी होता है सो हो, मुझे क्या लेना देना। आखिर मैं किस-किस की चिंता का बोझ ढोऊं? खुद के लिए भी जीवन छोटा पड़ रहा है, फिर औरों के लिए क्यों जीऊं?

लगता है, मनुष्य की संवेदनशीलता खोने लगी है। हर सुबह सुर्खियों में छपने वाली अमानवीय खबरें दिल को छूती तक नहीं। भले चाहे वह बच्चों का अपहरण और विक्रय हो, महिलाओं के साथ बलात्कार हो, दहेज के लिए जिंदगी को मिटा देने वाली क्रूरतम घटनाएं हों। भोजन, वस्त्र, प्रसाधन-सामग्री और मनोरंजन के नाम पर निरीह पशु-पक्षियों का जीवन संहार हो या फिर निर्दोष लोगों की हत्या कर देने की हृदयद्रावक सूचनाएं हों।

सड़क पर पड़े आदमी की सिसकन, भूखे-प्यासे बीमार की आहें, बेरोजगारों की बेबसी, अन्याय और शोषण से प्रताड़ित आदमी की पीड़ा कहां ज़गा पाती है मन में करुणा?

स्वार्थ-चेतना से जुड़े सांप्रदायिक व्यामोह ने भी धर्म को अपनी-अपनी सीमाओं में बांधकर कैदी बना लिया। हमें यह तो याद रह गया कि हम हिंदू हैं, मुसलमान हैं, सिक्ख हैं, ईसाई हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं, पर यह भूल गए कि हम पहले इनसान हैं। इस आग्रही मनोवृत्ति ने धर्म को प्रश्नों के कठघरे में ला खड़ा कर दिया है।

सच तो यह है कि अकेला व्यक्ति न सुरक्षित रख पाता है अपनी अस्मिता, न दे पाता है किसी को अखंड विश्वास, न बांट-बटोर सकता है–निःस्वार्थ प्रेम, न कर पाता है किसी का सहयोग और सेवा, न बिठा पाता है वैचारिक भावात्मक सामंजस्य और न अनुभव कर सकता है सबके साथ सह-अस्तित्व का एहसास।

अमीर को चिंता है कि यश, वैभव और प्रतिष्ठा को ऊंचाई कैसे दे और गरीब को चिंता है कि हम पापी पेट के लिए दो जून की रोटी का जुगाड़ कैसे करें? अतिभाव और अभाव की चिंता में डूबी स्वार्थ-चेतना को कहां है इतनी फुरसत कि वह सर्वेक्षण कर यह जान सके कि आखिर यह वर्गभेद, मतभेद और मनभेद जनमे कैसे?

हम अपनी महत्त्वाकांक्षाओं में इतने बंध गए कि इस स्वार्थ में हमारी निष्पक्ष न्याय-चेतना भी खो गई। आज की दूषित राजनीति में सिर्फ अपने को सुरक्षित रखने के सिवाय राजनेताओं का कोई चरित्र नहीं है। यही वजह है कि राष्ट्रीय समस्याओं, फैलती बुराइयों, अंधविश्वासों और अर्थशून्य परंपराओं के सामूहिक विरोध की ताकत निस्तेज पड़ गई है।

जरूरी है दिशा बदलने की। परार्थ और परमार्थ चेतना जगाने की। दोनों हाथ एक साथ उठेंगे तो एकता, संगठन, सहयोग, समन्वय और सौहार्द की स्वीकृति होगी। कदम-से-कदम मिलाकर चलेंगे तो क्रांति-पथ का कारवां बनेगा। यही शक्ति होगी बुराइयों के विरुद्ध जिहाद छेड़ने की।

हम सबके लिए जीएं तो फिर न युद्ध का भय होगा, न असुरक्षा की आशंका, न अविश्वास, न हिंसा, न संग्रह, न शत्रुता का भाव। सारे निषेधात्मक भावों की अस्वीकृति– निर्माण के नये पथ को रोशन करेगी।

अध्यात्म के क्षेत्र में अकेले जीने की बात आत्मविकास का एक सार्थक प्रयत्न है, क्योंकि वहां शुद्ध आध्यात्मिक चिंतन रहता है कि व्यक्ति अकेला जनमता है, अकेला मरता है। यहां कोई अपना-पराया नहीं है। सुख-दुःख भी स्वयं द्वारा कृत कर्मों के फल हैं। फिर क्यों किसी की शरण में जाएं? क्यों किसी के लिए जीएं? किंतु जीवन की व्यावहारिक भूमिका पर सबसे जुड़कर भी जो सिर्फ अपने लिए सोचता है वह किसी-न-किसी मोड़ पर अकेला पड़ जाता है। उसका अहं ऊंचा उठता है मगर आदर्शों की मीनारें नीचे झुक जाती है। वह समाज में अपनी पहचान बनाना चाहता है मगर यह भूल जाता है कि पहचान के लिए सुंदर चेहरा नहीं, श्रेष्ठ चरित्र चाहिए जो सबके लिए सीख बन सके।

'सबके लिए मैं क्यों जीऊं' इस चिंतनशैली को आज बदलना जरूरी है। यदि हमारे पास सचमुच! निर्माण के निष्ठाशील सपने हैं तो उन्हें सिर्फ जागते हुए देखें ही नहीं, सच बनाने के लिए ठोस कदम भी उठायें। अवश्य, हम नए पदचिह्न बनाते हुए अपने मुकाम तक पहुंचेंगे।

–डॉ. शान्ता जैन

समाधान की खोज में

अकेला और दो–अकेले को डर लगता है। बहुत लोग ऐसे हैं, जो अकेले में डरते हैं। दूसरा पास में आ गया, डर समाप्त हो गया। दो होना समाधान भी है और दो होना समस्या भी। लड़ाई किससे होती है? कभी अकेले में हुई है क्या? दो मिले, लड़ाई तैयार है। एक ने कुछ कहा, दूसरे ने कुछ कहा और लड़ाई शुरू हो जाती है।

प्रसिद्ध घटना है–एक लड़की जा रही थी। दूसरी लड़की सामने मिली। एक ने कहा–आ बहिन लड़ें। दूसरी बोली–मैं क्यों लड़ूं? लड़े तुम्हारी जूती। उसने कहा–मेरी जूती क्यों लड़े, लड़े तुम्हारी जूती। कहते-कहते दोनों की जूतियां निकल गईं।

लड़ाई में लगता क्या है? बाजार में जाकर कोई सामान खरीदना नहीं पड़ता। एक टेढ़ी बात कही और लड़ाई शुरू हो जाती है।

एक होने के लाभ भी हैं और एक होने की हानियां भी हैं। कोई साधना करे, उच्च भूमिका में पहुंच जाए, वह अकेला रहना चाहता है। जो आत्मा की भूमिका में पहुंच गया, उसके लिए अकेला रहना परम आनंद है। अच्छा लेखक, अच्छा साहित्यकार, अच्छा कवि अकेला रहना आवश्यक मानता है। बहुत अच्छा चिंतन करना है तो अकेला रहना पसंद करता है। नेपोलियन ने कहा था–'मैंने विश्व विजय की। मेरा इतना बड़ा साम्राज्य है। अगर मुझे कोई पूछे–तुम्हारी सर्वोपरि इच्छा क्या है तो मैं कहना चाहूंगा–मुझे एकांतवास मिल जाये। मैं अकेला रहूं, यह मेरी तीव्र अभिलाषा है।'

अकेला रहना बहुत अच्छा है किंतु जब कष्ट का समय आता है, कोई दुःख आता है, उस समय अकेला रहना अच्छा नहीं लगता। उस समय कोई दूसरा आ जाये, दुःख बांट ले, आश्वासन दे तो बहुत अच्छा लगता है। संवेदना प्रकट करे तो भी कुछ दुःख हलका होता है। मन की बात कहे तो भी दुःख हलका हो जाता है। मन ही मन में इकट्ठा करता चला जाये तो भार बढ़ता है। यह सापेक्ष कथन है–अकेला होना अच्छा भी है और अकेला होना समस्या भी है। दो होना अच्छा भी है और दो होना समस्या भी है।

ऋषभायण के संदर्भ में हम प्रस्तुत घटना पर विचार करें। वह यौगलिक बाला अकेली रह गई। साथी चला गया, माता-पिता भी चले गए। सारी दुनिया सूनी-सी हो गई।

यौगलिक नाभि के पास आये, बोले–'नाभि! आज एक समस्या, एक उलझन लेकर आए हैं। हमारे लिए, यौगलिक युग के लिए एक भारी समस्या है। आपको ध्यान देना होगा।'

समस्या कोई भी हो, प्रारंभ में ध्यान दें तो समाधान हो जाता है। यदि समस्या उलझ जाती है तो फिर उसे सुलझाना कठिन होता है।

नाभि ने कहा–'बोलो, क्या बात है।'

'समस्या है यह कन्या।'

'क्या हुआ है?'

'इसका साथी मर गया है।'

कुलकर नाभिदेव चरणों में,
युगलों का गण पहुंच गया।
किया निवेदन श्रुत घटना का,
अणु अणु में साकार दया।।

बाल मृत्यु ने किया उपस्थित,
संशय युगल व्यवस्था में।
देखें देव! अकेली बाला,
है असहाय अवस्था में।।

हो कोई उपचार अनुत्तर,
पुनरावर्तन हो न कभी।
युगल युगल ही रह पाएं हम,
अभय शांति साम्राज्य तभी।।

यह एकदम अनसुनी बात थी। नाभि ने कहा–'क्या हुआ?' कन्या ने सारी बात सुनाई। नाभि को भी एक आघात लगा। जब कोई ऐसी दर्दनाक घटना होती है तो सुनने वाले को भी, जिसमें संवेदना है, करुणा है, मानवीय चेतना है, आघात-सा लगता है। नाभि नेता थे, कुलकर थे, उनको आघात लगना स्वाभाविक था। नाभि ने सहानुभूति के स्वर में कहा–यह कैसे हुआ? बात समझ से परे है।

कुछ बातें समझ से परे होती हैं। कुछ बातों की व्याख्या नहीं की जा सकती। उन बातों को अव्याकृत कहा गया, जिनका व्याकरण नहीं किया जा सकता। यह घटना बुद्धि से परे थी, समझ और व्याख्या से परे थी। नाभि ने कहा–'लगता है अब बहुत परिवर्तन हो रहा है। काल बदल रहा है, युग बदल रहा है। हमें भी अब सावधान होना है, जागरूक बनना है।'

जो व्यक्ति समय की गति को पहचान लेता है, देख लेता है, जान लेता है और समय की नब्ज पर जिसका हाथ रहता है वह जागरूक होकर चलता है, विकास करता है। जो समय की गति को नहीं पहचानता, युग की नब्ज पर जिसका हाथ नहीं होता, वह पिछड़ जाता है और ज्यादा दुःखी बनता है।

काल को पहचानना बहुत जरूरी है। एक संस्कृत कवि ने मूर्ख की परिभाषा करते हुए लिखा–

काव्यं करोतु परिजल्पतु संस्कृतं वा,
सर्वाः कलाः समधिगच्छतु वाच्यमानाः।
लोकस्थितिं यदि न वेत्ति यथानुरूपं,
सर्वस्य मूर्खनिकरस्य स चक्रवर्ती।।

जो व्यक्ति कविता करता है, संस्कृत में बोलता है अथवा सब कलाओं को हस्तगत कर लेता है, किंतु लोक व्यवहार को नहीं जानता, लोकस्थिति को नहीं जानता, युगबोध नहीं करता, वह मूर्खों का सरदार है, चक्रवर्ती है।

नाभि ने कहा–'हमें युग चेतना को जगाना होगा। युग बदल रहा है, परिस्थितियां बदल रही हैं। अगर हम नहीं बदलेंगे तो ऐसे ही रह जायेंगे।' नाभि के सामने एक चिंतन का बिंदु आ गया।

नाभि बोले–'अब हमें इस समस्या पर विचार करना होगा। क्या करें? कैसे सुलझायें इस समस्या को?'

युगल बोले–'स्वामी! अकेली कन्या को तो हम नहीं छोड़ सकते। जो घटना हो गई, वह हो गई, इसका आप उपचार करें?'

नाभि ने एक क्षण चिंतन के पश्चात कहा–'तुम ही बताओ, इस समस्या को कैसे सुलझाना चाहिए?'

युगल बोले–'स्वामी! हम ज्यादा तो सोच नहीं सकते। हमारी अल्प मति है। एक बात ध्यान में आ रही है–यदि ऋषभ इस कन्या को स्वीकार कर ले तो इस समस्या का समाधान हो जायेगा। इसका और कोई उपाय नहीं है। आप समर्थ हैं, ऐसा कर सकते हैं। आपको एक नई परंपरा का सूत्रपात करना होगा।'

अनुनय विनय हमारा प्रभुवर!
बाला आज शरण्य बने।
पारसमणि का स्पर्श प्राप्त कर,
मिट्टी पुण्य हिरण्य बने।।

बने ऋषभ की प्रवरा पत्नी,
एक नया आयाम खुले।
नव्य चित्र का भव्यांकन हो,
अब कौसुंभी रंग घुले।।

जो परंपरा से चल रहा है उसे हर कोई निभाता है। मारवाड़ में एक गांव है–जाडण। वहां मठ है। एक दिन गुरु खड़ा था मठ में। एक सांप निकला। उसने लाठी बजाई। सांप चला गया। चेलों ने सांप को नहीं देखा, यह देखा कि गुरु लाठी पीट रहे हैं। उन्होंने रोज लाठी बजाना शुरू कर दिया। परंपरा हो गई। परंपरा ऐसे ही तो होती है। कोई उद्देश्य के साथ शुरू करता है और उसका अनुकरण हो जाता है।

युगलों ने कहा–'नई परंपरा का सूत्रपात करना होगा और वह भी विवेकपूर्ण परंपरा का। हमारी प्रार्थना है कि इस कन्या का आप ऋषभ के साथ विवाह कर दें।'

आज तक कोई विवाह हुआ नहीं था। विवाह का नाम भी नहीं जानते थे। यह एक नया प्रसंग बन गया। नाभि ने कहा–'तुम्हारा प्रस्ताव तो अच्छा है, पर जो आज तक नहीं हुआ है वह काम करना बड़ा कठिन है।'

यौगलिकों ने कहा–'जो बड़े लोग होते हैं, वे नया काम करते हैं, पुरानी लीक पर नहीं चलते।'

अश्वघोष ने बुद्धचरित में लिखा–राजा और ऋषियों का चरित्र विलक्षण होता है। जो काम पूर्वजों ने नहीं किया, वह काम उनके पुत्रों ने किया है, उनके शिष्यों ने किया है।

राज्ञां ऋषीणां चरितानि तानि
कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वैः।

अगर हम यह सोचते रहें कि आज तक ऐसा नहीं हुआ, अब कैसे होगा? इसका मतलब है–अब नया करने का दरवाजा बंद हो गया, नया कुछ हो नहीं सकता। यह सबसे बड़ी जड़ता है। कभी बंद नहीं होता दरवाजा। नया करने का द्वार हमेशा खुला रहता है। करने वाला समर्थ होना चाहिए, बुद्धिमान होना चाहिए। करने वाले में साहस होना चाहिए, सूझ-बूझ होनी चाहिए, मनोबल होना चाहिए। सबसे बड़ी बात है–आत्मस्थता होनी चाहिए।

आचार्य भिक्षु ने अनेक नए काम किये। सब गुरु अपना चेला बनाते थे, साधु अपना चेला बनाते थे। स्वामीजी ने बिलकुल नया काम किया कि कोई किसी को चेला नहीं बना सकेगा। एक नया काम कर शिष्य-शाखा को समाप्त कर दिया।

इतिहास साक्षी है–भगवान महावीर के काल से बराबर चल रहा था कि दीक्षा ली, थोड़ा योग्य बना, उसने अपने पांच नए चेले बना लिए। जो चेला बना, योग्य बना, उसने अपने चेले बना लिए। चेलों की परंपरा चलती थीं। आचार्य भिक्षु ने नया काम किया और यह परंपरा समाप्त कर दी। उन्होंने नियम बना दिया–'आचार्य के सिवाय कोई दूसरा अपना चेला बना नहीं सकता।'

जयाचार्य ने अनेक नए काम किए। पूज्य गुरुदेव ने बहुत नये काम किए। आलोचना भी बहुत हुई, विरोध भी बहुत हुआ। भीतर से भी हुआ और बाहर से भी किंतु जो काम चिंतनपूर्वक, समझपूर्वक, विवेकपूर्वक, आधारपूर्वक होता है, वह युग के लिए वरदान बन जाता है। आचार्य तुलसी दूरदर्शी थे। वे बीस-तीस वर्ष बाद होने वाली बात पहले ही बतला देते थे।

मूल बात है–परिवर्तन करने वाला व्यक्ति समर्थ होना चाहिए। उसमें दूरदर्शिता होनी चाहिए, अंतर्दृष्टि का विकास होना चाहिए। अन्यथा मन में आये वैसा परिवर्तन कर दे तो सारी व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। परिवर्तन न करे, कोरा रूढ़िवादी बना रहे तो अच्छा नहीं होता। जो युग को नहीं समझता, युग की आवश्यकता को नहीं समझता, अपेक्षा को नहीं समझता, वह कोरा रूढ़िवादी होता है। वह सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता।

कोरा रूढ़िवादी होना भी अच्छा नहीं, विवेक शून्य होकर परिवर्तन करना भी अच्छा नहीं। मध्यम मार्ग है–जहां परिवर्तन हो, वहां उसके साथ विवेक भी हो, अपेक्षा, सापेक्षता और समझदारी भी हो।

नाभि बड़े समझदार थे, उनका चिंतन विकसित हो रहा था। नाभि ने कहा–'तुम्हारा प्रस्ताव अच्छा है, चिंतन की अपेक्षा है। आज यौगलिक युग समस्या से संकुल है। कितनी समस्याएं हैं। आज भोजन की समस्या विकट बन गई है। एक समय था कल्पवृक्ष पूरा खाने को देते थे। आज कल्पवृक्ष भी कंजूस बन गये हैं। मुट्ठी बंद कर ली। पूरा भोजन नहीं मिल रहा है। वस्त्र की समस्या है। मकान की समस्या है। इनको लेकर युगलों में कभी संघर्ष नहीं होता था।

आज युगलों में संघर्ष होना शुरू हो गया है, लड़ाइयां शुरू हो गई हैं। इतनी ढेर सारी समस्याएं विद्यमान हैं, क्या एक नई समस्या और पैदा कर लें? किसी की कन्या को किसी के साथ जोड़ दें तो एक और उलझन पैदा नहीं हो जायेगी?

समस्या को कैसे सुलझाएं? तुम भी सोचो। इसका समाधान दो। वह समाधान सबको मान्य होना चाहिए।'

है सुंदर प्रस्ताव तुम्हारा,
सचमुच मन को भाता है।
गहन अपेक्षा है चिंतन की,
जब पराग इठलाता है।।

विकट समस्या है भोजन की,
और वस्त्र भी उलझन है।
कल्पवृक्ष के कृपण भाव से,
आशंकित सबका मन है।।

बहुत अल्प आवास बचे हैं,
युगल कष्ट की गाथा है।
समाधान है दृष्टि अगोचर,
झुका हुआ यह माथा है।।

उछल रही है युगल जगत में,
संघर्षों की चिनगारी।
अलसाई सी, मुरझाई सी,
निज शासन की फुलवारी।।

बोलो जटिल समय में कैसे,
इस उलझन को प्रश्रय दें?
इतो व्याघ्र है इतस्टटी है,
कैसे स्वर को मधु लय दें?

नाभि के इस कथन में समस्या की गंभीरता और समाधान की व्यग्रता झलक रही थी। नाभि के कथन से सहमत यौगलिकों ने कहा–'आप जो समाधान देंगे, वह सबको मान्य होगा, किसी नई समस्या का कारण नहीं बनेगा।'

'क्या तुमने कुछ सोचा है?'

'हमने जो समाधान का प्रस्ताव प्रस्तुत किया है, उसे आप सहमति दें, स्वीकृति दें। हमारा विश्वास है यह गंभीर समस्या सुलझ जायेगी।' ❐

अध्यात्म विकास के सूत्र

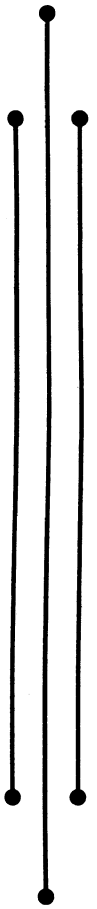

आचार्य महाश्रमण

जैन वाङ्मय का एक सुंदर सूक्त है–**सव्वेसिं जीवियं पियं।** सभी प्राणियों को जीवन प्रिय है। इसलिए किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो। अहिंसा की चेतना जगाने के लिए मैत्री का प्रयोग अपेक्षित होता है। जैन साहित्य में सोलह अनुप्रेक्षाओं का वर्णन मिलता है। उनमें अंतिम चार अनुप्रेक्षाएं अहिंसा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। आचार्य अमितगति ने 'परमात्म-द्वात्रिंशिका' में इन चार अनुप्रेक्षाओं का उल्लेख करते हुए कहा है–

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
मध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव!

हे प्रभो! मेरे मन में सब प्राणियों के प्रति मैत्रीभाव, गुणीजनों के प्रति प्रमोद भाव, दुःखियों के प्रति करुणा भाव और विपरीत वृत्ति वालों के प्रति माध्यस्थ भाव बना रहे। इन चार भावनाओं में **पहली भावना है–मैत्री**। सब प्राणियों के प्रति मेरे मन में मैत्री की भावना बनी रहे। मैत्री का एक अर्थ किया गया है–**मैत्री परेषां हितचिंतनं यद्** दूसरों का हित चिंतन करना मैत्री है। आदमी अपनी ओर से किसी को कष्ट न पहुंचाए, किसी के दुःख में निमित्त न बने। यथा संभव, दूसरों के प्रति हित-चिंतन करता रहे।

दुनिया में निंदा/तिरस्कार भी चलता है। किसी का अपमान करना बहुत आसान काम है। किसी दार्शनिक से पूछा गया–दुनिया में सरल काम क्या है? दार्शनिक ने कहा–दूसरों की निंदा करना। मैत्री की भावना रखने वाला व्यक्ति यह चिंतन करे कि किसी के कहने से कोई व्यक्ति साहूकार नहीं बन जाता और किसी के कहने मात्र से कोई व्यक्ति चोर नहीं बन जाता। **अप्पा अप्पं वियाणेई**–आदमी अपने आपको जानता है कि मैं कैसा हूं? इसलिए निंदक व्यक्ति के प्रति भी मंगल भावना/मैत्री भावना का प्रयोग करे।

दूसरी भावना है–प्रमोद भावना। गुणीजनों के प्रति प्रमोद भावना का विकास करे। आदमी दूसरों की उन्नति देखकर नाखुश न बने। अपितु दूसरों के विकास में प्रसन्न और खुश रहे। मैं भी विकास करूं और दूसरे भी विकास करें, यह भावना बनी रहे। किसी सज्जन ने मछुआरे से पूछा–भैया! यह केकड़ों वाली ऑडी (बर्तन) खुली पड़ी है, फिर भी इसमें से केकड़े बाहर क्यों नहीं निकल रहे?

मछुआरा बोला–महाशय! इन केकड़ों में से कोई भी केकड़ा बाहर निकलने के लिए ऊंचा उठता है तो दूसरे केकड़े उसकी टांग खींचकर उसे गिरा देते हैं। इसलिए कोई भी केकड़ा बाहर नहीं निकल सकता। यह केकड़ा वृत्ति प्रमोद भावना की दुश्मन है। जिस आदमी का चित्त प्रमोद भावना से भावित हो जाता है, उसकी चेतना निर्मल बन जाती है।

तीसरी भावना है–कारुण्य। आदमी के मन में हिंसा की चेतना न जागे। दूसरों को कष्ट में देखकर अनुकंपा के भाव जागे। आदमी यह चिंतन करे कि मैं किसी का शोषण न करूं। एक मालिक मजदूर से काम लेता है और वेतन अनुपात से कम देता है तो मानना चाहिए कि मालिक के द्वारा मजदूर का शोषण किया जा रहा है। एक मजदूर यदि पैसा पूरा लेता है और काम कम करता है तो समझना चाहिए कि मजदूर द्वारा मालिक का शोषण हो रहा है। कोई किसी का शोषण न करे। एक दूसरे के प्रति कर्तव्यनिष्ठा और अनुकंपा की भावना बनी रहे।

मिल मालिक का अचानक स्वर्गवास हो गया। इसलिए मैनेजर ने यह घोषणा कर दी कि आज अवकाश रहेगा। कर्मचारी अपने-अपने घर जा रहे थे। एक कर्मचारी ने अपने मित्र से पूछा–मालिक का अचानक स्वर्गवास कैसे हो गया? मित्र ने कहा–सुना है कि दिल का दौरा पड़ने से उनकी मृत्यु हो गई। पहले मित्र ने कहा–अरे! दिल तो उसके था ही कहां, जो दौरा पड़े।

दिल उसके होता है, जिसमें दया होती है। निर्दय आदमी के दिल नहीं होता। निष्करुण आदमी दूसरों को कष्ट देने में संकोच नहीं करता। आदमी में प्राणी मात्र के प्रति करुणा का भाव होना चाहिए।

चौथी भावना है–माध्यस्थ। आदमी तटस्थ रहना सीखे। जीवन में अनेक स्थितियां ऐसी आती हैं, जो अमनोज्ञ होती हैं। हम नहीं चाहते, फिर भी वैसी स्थितियां बन जाती हैं। हमारे आस-पास रहने वाले, अधीनता में रहने वाले व्यक्ति भी कभी-कभी हमारा अपमान कर देते हैं, सम्मान नहीं करते, ऐसी स्थितियों में मन उद्विग्न हो सकता है, किंतु माध्यस्थ भाव का विकास हो तो आदमी प्रतिकूल परिस्थिति में तटस्थ रह सकता है। उपाध्याय विनयविजयश्री द्वारा रचित **शांतसुधारस भावना**, में सुंदर कहा गया–

योऽपि न सहते हितमुपदेशं तदुपरि मा कुरु कोपं रे।
निष्फलया किं परिजनतप्त्या, कुरुषे निजसुखलोपं रे।।
अनुभव विनय! सदा सुखमनुभव औदासीन्यमुदारं रे।।

यदि कोई तुम्हारे हितोपदेश को नहीं सुनता है तब भी तुम उस पर क्रोध मत करो। दूसरों की निरर्थक गलती को देखकर तुम दुःखी क्यों बनते हो? हे आत्मन्! माध्यस्थ भाव का अनुभव करो और सदा सुख का अनुभव करो।

जहां एक साथ अनेक व्यक्ति रहते हों, वहां कभी कहना भी पड़ता है और कभी सहना भी पड़ता है। कहीं कहना, कहीं सहना और शांति से रहना–इस सूत्र को अपनाने वाला व्यक्ति अच्छा जीवन जी सकता है। माध्यस्थ भावना का विकास हो तो आदमी शांतिपूर्ण और व्यवहार कुशल जीवन जी सकता है। इन चार भावनाओं की निर्धारित अनुप्रेक्षाओं के अभ्यास से व्यवहार परिष्कृत होता है, चेतना निर्मल बनती है और अध्यात्म का विकास होता है। ❐

आत्म-मंथन का पर्व

आचार्य तुलसी

राष्ट्रीय विकास का स्वप्न हर व्यक्ति का स्वप्न है। ऐसे स्वप्न को संजोना और उसे पूरा करने के लिए प्रयत्नशील रहना हर निष्ठाशील राष्ट्रवादी के लिए आवश्यक है। राष्ट्र के लिए विकास जरूरी है, इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते, क्योंकि विकास के बिना कोई भी राष्ट्र अपनी गरिमा को सुरक्षित नहीं रख सकता, किंतु विकास की बात सोचने से पहले यह सोचना अधिक जरूरी है कि संतुलित विकास कैसे हो? ऐसा प्रतीत हो रहा है कि भौतिक क्षेत्र में–औद्योगिक, व्यावसायिक और आर्थिक क्षेत्र में विकास हो रहा है, पर उस विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय अनुशासन और चरित्र का जितना विकास होना चाहिए, उसकी गति बिलकुल मंद है। इसलिए भौतिक विकास कुछ उलझनें पैदा कर रहा है।

जो राष्ट्र अपने नागरिकों में आत्मानुशासन के प्रति विश्वास पैदा नहीं कर सकता, वह अनचाही समस्याओं में उलझ जाता है। महात्मा गांधी इसी राष्ट्र में हुए। उन्होंने आत्मानुशासित व्यक्तियों के निर्माण का प्रयत्न किया। कुछ व्यक्ति निर्मित हुए और उन्होंने अपनी विशेषताओं से राजनीति को प्रभावित भी किया।

राजनीति का बहुत मूल्य है, पर वह सब कुछ नहीं है। राज्यसत्ता का संचालन करने वाले बहुत बड़ा काम करते हैं, किंतु केवल वही एकमात्र बड़ा काम नहीं है। राजनीति से भी महत्त्वपूर्ण होता है किसी राष्ट्र का चरित्र और राजनेता से भी बड़ा होता है—व्यक्तित्व का निर्माता। व्यक्ति का निर्माण करने में संकल्पशक्ति, आत्मानुशासन, चारित्रिक विकास की अपेक्षा रहती है। इनके अभाव में आज जो प्रश्न खड़े हैं, उन्हें समाधान देने के लिए कोई तरीका खोजा जाना चाहिए।

आज विज्ञान द्रुतगति से आगे बढ़ रहा है। उसकी नई उपलब्धियों ने यह विश्वास दिलाया है कि मानवीय स्वभाव को बदला जा सकता है, इच्छाओं और आकांक्षाओं को बदला जा सकता है, आदतों को बदला जा सकता है। यह कोई लक्ष्मणरेखा नहीं है, जिसे बदलना संभव न हो। कमी यही लग रही है कि बदलने की दिशा में कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। बदलने की आकांक्षा जगाने वाला कोई व्यक्ति हो और बदलने का तरीका हाथ में हो तो असंदिग्ध रूप से राष्ट्र का कायापलट हो सकता है। आज राष्ट्र की सबसे बड़ी अपेक्षा यही है। उन बदलने वाले व्यक्तियों की खोज राष्ट्रनेता करें या वे स्वयं आगे आए। यह निर्णय मेरी सम्मति में इन दोनों को ही करना चाहिए।

बदलने का तरीका क्या हो? इस प्रश्न के उत्तर में अनेक अभिमत सामने आ सकते हैं, पर सबसे अच्छा तरीका हो सकता है–चारित्र का अभ्यास। उसके लिए मैं अणुव्रत का नाम सुझा सकता हूं। अणुव्रत कोरी आचार-संहिता नहीं है और कोरा आंदोलन भी नहीं है। वह पूरा जीवन-दर्शन है जिसके आधार पर एक जीवन-प्रणाली तैयार की जा सकती है। जीवन-प्रणाली भी ऐसी नहीं, जो केवल आदर्श की प्रतीक हो। प्रतीकात्मक ढंग से काम हो भी नहीं सकता। अणुव्रत ऐसा जीवन-दर्शन देता है, जिसे पूर्ण रूप से व्यवहार में लाया जा सकता है।

दो स्थितियां हैं संसार के सामने–भोग और त्याग। भोग का अतिवाद समाज को पतन की ओर ले जाता है। त्याग का अतिवाद सबके लिए संभव नहीं बनता। अणुव्रत एक ऐसा मध्यम मार्ग है, जो भोग को सीमित करता है तथा त्याग को संभवता की सीमा में प्रोत्साहन देता है। इसके लिए शिक्षा में परिवर्तन जरूरी है। वर्तमान में शिक्षा के द्वारा केवल बौद्धिक विकास हो रहा है। बौद्धिक विकास बहुत आवश्यक है, किंतु वह समस्याओं के समाधान के लिए पर्याप्त नहीं है। समस्या सुलझती है–ज्ञान, चेतना और अंतर्दृष्टि का संतुलित विकास होने से। बौद्धिकता बढ़े और उसके साथ-साथ अंतश्चेतना न जागे तो बौद्धिकता स्वयं समस्या बन सकती है, इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में अंतर्दृष्टि को जगाने वाली विद्या की शाखा को जोड़ दिया जाए तो वह भावी पीढ़ी के लिए एक महत्त्वपूर्ण अवदान हो सकता है।

अंतर्दृष्टि को जगाने वाली विद्या को मैं जीवन-विज्ञान कहता हूं। हमने प्रेक्षाध्यान के माध्यम से इस क्षेत्र में कुछ नए प्रयोग किए हैं। उन प्रयोगों के निष्कर्ष यह बताते हैं कि जीवन-विज्ञान की इस प्रणाली से अंतर्दृष्टि को जाग्रत करने में सफलता मिल सकती है। मैं धर्म या अध्यात्म की वकालत नहीं कर रहा हूं, किंतु बुद्धि और अंतर्दृष्टि के संतुलन के बिना राष्ट्रीय विकास उन्मुक्त नहीं हो सकता, इस सचाई को अनुभव कर रहा हूं। मेरा विश्वास है कि इस अनुभूति के स्वर को समझने में किसी को कठिनाई नहीं होनी चाहिए, फिर भी यदि कोई कठिनाई हो तो उसे चिंतन के द्वारा सुलझाया जा सकता है।

स्वतंत्रता के महापर्व पर केवल स्वतंत्रता की आयोजना ही पर्याप्त नहीं है, किंतु बड़ी तपस्या से उपलब्ध स्वतंत्रता को स्थायी और प्रभावी कैसे बनाया जा सके तथा राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक उससे लाभान्वित कैसे हो सके, यह आत्म-मंथन जरूरी है। मैं तो इस स्वतंत्रता के पर्व को आत्म-मंथन का ही पर्व मानता हूं। मंथन में से ही नवनीत की संभावना की जा सकती है। जहां चिंतन रूढ़ हो जाता है, राजनीति की चकाचौंध में उलझ जाता है, वहां प्रगति के दरवाजे बंद हो जाते हैं। बंद दरवाजों को खोलने के लिए कोई अवतार धरती पर नहीं आएगा और न ही समय की प्रतीक्षा करते रहने से कोई काम हो सकेगा। जिस दिन राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक अपने चरित्रबल के आधार पर ऊंचा उठेगा, राष्ट्र का भविष्य बोलने लगेगा। राष्ट्रीय चरित्र को सुदृढ़ बनाने के लिए व्यक्ति-व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करना ही होगा। मैं मंगल कामना करता हूं कि इस पर्व के उपलक्ष में हमारा चिंतन उन्मुक्त बने और प्रगति का पथ प्रशस्त करे। ❐

वसुधैव कुटुम्बकम्

आचार्य तुलसी

राष्ट्रीय एकता एक अच्छा माध्यम है बुराइयों से बचने और अच्छाइयों को विकसित करने का। ईर्ष्या, द्वेष, निहित स्वार्थ, जातीय और सांप्रदायिक घृणा–ये या इस प्रकार के जो अन्य दुर्गुण हैं, ये सब हिंसा के रूप हैं। राष्ट्रीय एकता को सबसे बड़ा खतरा हिंसा से है। जैसे-जैसे हिंसा बढ़ती है, वैसे-वैसे राष्ट्रीय एकता की नींव कमजोर होती चली जाती है। राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा ने अलगाववाद को प्रोत्साहन दिया। सांप्रदायिकता के आधार पर भी अलगाववाद सिर उठाता रहा। यदि राष्ट्रप्रेम विकसित हो तो जातीयता, सांप्रदायिकता और राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा–ये सब दूसरे नंबर पर आ जाते हैं, फिर राष्ट्र के विघटन का खतरा नहीं रहता।

यह खेद का विषय है कि आज हिंदुस्तान में जातीयता, सांप्रदायिकता और राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा प्रथम नंबर पर है और राष्ट्र-प्रेम दूसरे, तीसरे, चौथे या किसी नंबर पर है अथवा नहीं, यह भी पता नहीं है। कुछ राष्ट्र अनैतिकता से एक सीमा तक बचे हुए हैं। उसका हेतु पारलौकिक चिंतन या आध्यात्मिक विकास नहीं, किंतु राष्ट्र प्रेम है। व्यक्ति का अपने परिवार के प्रति प्रेम होता है तो वह उसके साथ विश्वासघात नहीं करता। यदि वैसा ही प्रेम राष्ट्र के प्रति हो जाए तो वह राष्ट्र के साथ विश्वासघात कैसे करेगा?

मानवीय एकता में हमारा विश्वास है। **वसुधैव कुटुम्बकम्** इस आदर्श वाक्य को हम कभी उपेक्षित करना नहीं चाहते, किंतु राष्ट्रीय एकता का जो प्रायोगिक मूल्य है, उसकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। इसकी उपेक्षा हुई है। इससे हिंसा को प्रोत्साहन ही मिला है। नैतिक विकास, चारित्रिक विकास, पारस्परिक सौहार्द, संगठन, अनुशासन इन सब दृष्टियों से राष्ट्रीय एकता को ज्योति-स्तंभ बनाया जा सकता है। उसकी प्रकाश-रश्मियों से युवा-मानस अपना पथ देख सकता है।

राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करने का दायित्व सबका है, पर उसका बड़ा हिस्सा मैं युवा पीढ़ी के कंधों पर देखना चाहता हूं। अखिल भारतीय तेरापंथ युवक परिषद ने मेरी इस चाह को पकड़ा है और युवकों में भावना जगाने और वातावरण बनाने का काम किया है। मैं देश की युवा पीढ़ी को आह्वान करता हूं कि वह स्थिति की गंभीरता को समझे, प्रवृत्ति के परिणामों पर विचार करे और प्रेम, मैत्री, समता, सद्भावना, सहिष्णुता आदि मूल्यों को विकसित करे। ऐसा करके ही वह राष्ट्रीय एकता की प्रतिमा को खंडित करने वाली मानसिकता एवं प्रवृत्तियों का सशक्त प्रतिरोध कर सकती है।

स्वतंत्रता दिवस पर...

नेतृत्व की कसौटियां

- आत्मानुशासन का विकास
- स्वार्थी मनोवृत्ति में बदलाव
- तटस्थता की नीति का प्रयोग
- अन्याय से जूझने का मनोभाव
- संयम और सादगी का विकास

आचार्य तुलसी

भारत की राजनीति का अपना चरित्र रहा है। यहां एक से एक विशिष्ट नेता हुए हैं, जिन्होंने देश को नई दिशा दी है। दासता की जंजीरों से जकड़े हुए भारत को मुक्त कराने के लिए महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसक तरीके से युद्ध लड़ा गया। गांधीजी देश के नेता ही नहीं थे। वे नेताओं के निर्माता भी थे। उन्होंने नेतृत्व की विशिष्ट क्षमता रखने वाले अनेक व्यक्तियों का निर्माण किया–पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, सरदार वल्लभभाई पटेल, लालबहादुर शास्त्री, विनोबाभावे, अब्दुल कलाम आजाद, डॉ.जाकिर हुसैन आदि सक्षम नेताओं की एक लंबी पंक्ति गांधी-युग में सामने आई। उनके बाद तो ऐसा प्रतीत होता है मानो नेतृत्व को ग्रहण लग गया। देश के नेतृत्व पर लगा प्रश्नचिह्न जब तक उत्तरित नहीं होगा, भारत की छवि को उज्ज्वलता नहीं दी जा सकेगी।

आज के हालात देखते हुए कहा जा सकता है कि यहां नेतृत्व का व्याकरण ही गड़बड़ा गया। नेता बनने के लिए हर व्यक्ति तैयार है, पर नेतृत्व की क्षमता पैदा करने की तैयारी किसी के पास नहीं है। नेता बनना जितना सरल है, नेतृत्व की क्षमता का अर्जन करना उतना ही कठिन है। पुराने नेता सदा के लिए अलविदा कह गए और नए नेता पनपे नहीं हैं। इतिहास में नेतृत्व की दृष्टि से व्यापक शून्य उभर रहा है। यह शून्य चिंता का विषय है। इससे भी अधिक चिंता की बात इस शून्य को भरने की संभावना का क्षीण होना है। वोटों के गलियारे से सत्ता के सिंहासन तक पहुंचने वाला प्रत्येक नेता आशा की नई लहर पैदा करता है, किंतु वहां से लौटते समय उसकी छवि इतनी धूमिल हो जाती है कि वह अपनी पहचान खो देता है अथवा दूसरे प्रकार की पहचान बना लेता है। देश-सेवा या विकास के लिए उसके द्वारा दी जाने वाली दुहाइयां पारे की तरह बिखर जाती हैं, सृजनशीलता के पग थम जाते हैं और गरीबी दूर करने के नारे केवल नारे बनकर रह जाते हैं।

राजनीति के क्षेत्र में ही क्यों, समाज और धर्म के क्षेत्र में भी शून्य का संकट गहरा रहा है। नेता दिखने और नेता बनने में अंतराल बढ़ता जा रहा है। उसे भरने के लिए कुछ ऐसे बिंदुओं पर ध्यान केंद्रित करना होगा, जो नेतृत्व को सही धरातल दे सकें। उस धरातल को ठोस रूप देने के लिए आवश्यक है–

नेतृत्व की इन न्यूनतम कसौटियों पर कोई खरा उतर सकता है क्या? इस प्रश्न का सटीक उत्तर है–महामात्य चाणक्य। घास-फूस की झोपड़ी में रहने वाला और अपनी झोपड़ी में नए कंबलों का ढेर होने पर भी पैबंद लगा कंबल ओढ़ने वाला चाणक्य कोई फरिश्ता नहीं था। वह अणुव्रत के सांचे में ढला हुआ एक मनुष्य था। वर्तमान के नेता चाणक्य की घटनाओं को सुनते-पढ़ते हैं, समय आने पर दूसरों को सुना भी देते हैं। वे दूसरों से वैसी अपेक्षा भी रखते होंगे, पर ऐसे प्रसंग में वे स्वयं को हाशिए में ले जाते हैं। इस वृत्ति से नेतृत्व में गुणवत्ता नहीं आ सकती। नेतृत्व के सामने खड़ी चुनौतियों को अणुव्रत की शक्ति के आधार पर आसानी से झेला जा सकता है।

एकलव्य बनने की विवशता क्यों?

राष्ट्रीय परिदृश्य तेजी के साथ बदल रहा है। प्राचीन मूल्य ढह रहे हैं और नए मूल्यों को वहां जगह मिल रही है। धार्मिक आस्थाओं के सुमेरु खड़े तो हैं, पर आधुनिकता के नाम पर विज्ञान और टैक्नोलोजी को उनके समकक्ष खड़ा करने और तोलने के प्रयास तेज हो रहे हैं।

अर्थतंत्र सर्वेसर्वा बनता जा रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने अपने पैर बेतहाशा पसार दिए हैं और यह सिलसिला द्रौपदी के चीर की तरह अब भी बढ़ता जा रहा है। विज्ञापनबाजी के युग में तिल का ताड़ बनाना तो पटु लोगों के लिए बाएं हाथ के खेल से अधिक नहीं होता। इस आपाधापी और वैश्वीकरण के युग में नई पीढ़ी या तो दिशाहीन हो रही है अथवा एकतरफा जाती हुई दिखाई दे रही है।

शिक्षा के नाम पर अंग्रेजी मत का भूत सिर पर चढ़कर बोलने लगा है। सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षक भी इस संक्रामक बीमारी के शिकार होने से नहीं बच पा रहे हैं। जमाने की हवा के झोंके या तो उन्हें उद्वेलित कर रहे हैं अथवा उनका सामर्थ्य और प्रभाव हाशिए में जाने को मजबूर हो गया है। एक अंधी होड़ मची है कि इस बेतहाशा दौड़ में कौन कितना आगे जा पाता है।

विदेशों में जाकर शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करना तो जैसे फैशन और सामाजिक प्रतिष्ठा का कारण बन गया है। आलम यह है कि इसके लिए जो भी कीमत चुकानी पड़े, तो पड़े। संस्कारों को दावं पर लगाकर अंधी प्रतिस्पर्धा की दौड़ लग रही है, यह मानकर कि जो उपलब्धि होगी, वह सर्वश्रेष्ठ और कामयाबी की प्रतीक बनेगी।

अपने पुश्तैनी व्यापार और व्यवसाय के प्रति घृणा और वितृष्णा के भाव पता नहीं क्यों पैदा हो रहे हैं अथवा पैदा किए जा रहे हैं। उन्हें पूंरी हवा दी जा रही है। वर्षों की मशक्कत के बाद यह बताया जाता है कि मेरे बेटे अथवा बेटी की शिक्षा-दीक्षा पूरी हो गई है और उसे अमुक कंपनी में जॉब मिल गया है। यदि किसी विदेशी कंपनी में जॉब स्वीकृत हो जाता है, तो उसके चर्चे बड़ी शान से किए जाते हैं। व्यापार और व्यवसाय के क्षेत्र में अंग्रेजी पढ़ा समाज अपने पारंपरिक काम-धंधों से जॉब के नाम पर नौकरियों की ओर मुखातिब हो रहा है।

शिक्षा के क्षेत्र में विकास को मैं गलत नहीं मानता, पर वह शिक्षा हमारे स्वयं के व्यापार और व्यवसाय को त्यागने की कीमत चुकाकर क्यों हो? जिस व्यापारिक तंत्र की बदौलत बच्चा पढ़-लिखकर मैदान में आ रहा है, उस व्यापार के प्रति उसके मन में, अन्यथा भावों का अभ्युदय क्यों? हां, उसकी शिक्षा-दीक्षा, योग्यता वर्तमान व्यापार में अभिवृद्धि की हेतु बने, उसके नवीनीकरण में योगभूत बने, तब तो उसका स्वागत किया जाना चाहिए अन्यथा वह वक्त आ सकता है जब समाज की नई पीढ़ी जॉब के नाम पर नौकरीपेशा बन जाएगी और उनकी अपनी विरासत और सोच फिसल जाएगी। उनकी क्षमताएं उनके अपने पास नहीं, औरों के लिए कैद हो जाएगी। जो दृश्य दिखाई दे रहा है, उससे तो यही संकेत उभरकर सामने आ रहे हैं कि नई पीढ़ी का भविष्य कहां जाकर ठहरने वाला है।

हर तंत्र पर अर्थ की मार पड़ रही है। आर्थिक शक्तियां हर मोर्चे पर हावी हो रही हैं। हर क्षेत्र में तकरीबन इनका ही बोलबाला है। उनके संस्कार कैसे हैं? उनका सांस्कृतिक गौरव कैसा है? यह जानने का न तो साहस बचा है और न ही इसे जानने की इच्छा-शक्ति शेष रही है। समाज की जाजिम पर ही क्यों, धार्मिक मंचों पर भी उनका बोलबाला सुस्पष्ट है। इन क्षेत्रों के अगुवाओं पर भी चांदी की मार भारी पड़ रही है।

ऐसी विकट स्थिति में संस्कारों के संरक्षण की बात कौन करे? आखिर दीपक की मद्धिम लौ कितनी देर तक टिमटिमा सकेगी। हवाओं के तीव्र झोंके तो उसका अस्तित्व मिटाने के लिए व्यग्र हो रहे हैं। उसे टिमटिमाने का हौसला देने वाले लोग भी कहां हैं? जिस पीढ़ी को संस्कारों के प्रशिक्षण की आवश्यकता है, उसे प्रशिक्षण कौन देगा? वह आदर्श प्रतिमा आएगी कहां से, जिसका स्वयं का जीवन ही बोलती तसवीर जैसा हो?

आज मार्केटिंग के युग में उपदेश और प्रवचन तक भी धार्मिकता के नाम पर व्यवसाय करने वाले इन चैनलों की चौबीसों घंटों की सेवाएं अर्थ के साथ अनुबंधित हैं। वहां बोलने वाले लोगों के चेहरे और चरित्र की पहचान करना कठिन हो गया है। अनेक धर्माधिकारी स्वयं करोड़ों के अर्थतंत्र से जुड़े हैं। उनके आसपास घटित होने वाले अप्रिय प्रसंगों में शक की सूई उन के साम्राज्य की ओर घूमती दिखाई दे रही है।

ऐसे व्यक्ति जब स्वयं में आदर्श नहीं हैं, तो उनके कथन और प्रशिक्षण का खास प्रभाव समाज पर पड़ेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। ऐसी स्थिति में वे प्रशिक्षु क्या करेंगे, जिन्हें संस्कारों की जमीं चाहिए। जिन्हें संस्कारों का सघन प्रशिक्षण चाहिए।

पौराणिक आस्थाओं के महाग्रंथ महाभारत का एक जाना पहचाना प्रसंग है कि गुरुवर्य द्रोणाचार्य अपने शिष्य कौरवों और पांडवों को धनुर्विद्या का प्रशिक्षण प्रदान कर रहे थे। इस बीच उन्हें ज्ञात हुआ कि एक अछूत कहा जाने वाला युवक, जिसका नाम एकलव्य है, उनसे धनुर्विद्या का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहता है, पर गुरुदेव तत्कालीन समाज व्यवस्था से बंधे थे, उनकी विवशता थी, उन्होंने इसकी इजाजत प्रदान नहीं की। निराश और हताश एकलव्य ने फिर भी हार नहीं मानी। उसने एक

हमारी सोच उस अंतरिक्ष यात्री की तरह हो जिससे पूछा गया था कि अंतरिक्ष में क्या तुम रूस, चीन, अमेरिका, भारत को देख रहे हो? तब उसने एक ही उत्तर दिया था–यहां सिवाय पृथ्वी के कुछ नहीं दीखता। सारे देशों का भूगोल इसी में समाया हुआ है। हमें भी सिवाय राष्ट्रीय धर्म/ कर्तव्य के कुछ न दीखे, ऐसा अभ्यास डालें।

मिट्टी की प्रतिमा को गुरु द्रोण का प्रतीक मानकर स्वयं अपनी साधना शुरू की और इतिहास प्रसिद्ध धनुर्धर के रूप में स्वयं को स्थापित किया।

एक क्षण वह भी आया, जब गुरु द्रोण को यह ज्ञात हुआ कि यह युवा धनुर्धर मेरे द्वारा प्रशिक्षित शिष्यों को भी मात दे सकता है। शिष्य मोहवश गुरु उस अछूत पुत्र एकलव्य से गुरु-दक्षिणा में दाहिने हाथ का अंगूठा मांग बैठे और उसने तपाक से अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काट कर गुरुदेव के हाथों में रख दिया।

पौराणिक इतिहास के इस रोमांचक प्रसंग के पक्ष पर गौर करना लाजिमी होगा कि गुरु के इनकार किए जाने के बाद भी एकलव्य ने अपनी साधना को परवान चढ़ाने का साहस स्वयं में ढूंढ़ा। अंततः उसमें निष्णात होकर निकला। कभी-कभी लगता है कि राष्ट्र की बदलती तसवीर को देखते हुए आज समाज के उस वर्ग को, जिसे अपने सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा करनी है, के लिए एकलव्य-सी साधना अनिवार्य बन रही है। समुचित मार्ग निर्देश मिले या न मिले, उन्हें अपने आपका आत्म-निरीक्षण करते हुए अपने संस्कारों की जमीं स्वयं तलाशनी है। गुरु द्रोण जैसे सुयोग्य व्यक्ति पथ-दर्शक मिले और न भी मिले, कभी-कभी उन्हें ढूंढ़ पाना यदि मुश्किल भी हो, तब एक ही रास्ता बचता है कि वे दृढ़ इच्छा-शक्ति के साथ डटे रहे और स्वयं की परीक्षा के साथ अपने आपको साधने की दिशा में गतिमान बनें।

संस्कारों के प्रशिक्षण में नैसर्गिक संस्कारों की भूमि सदैव अहम रही है। बस, उन्हें सुयोग्य दिशा-दर्शन मिल जाए ताकि वे फल देने की स्थिति में आ सकें। किसी भी समाज, देश और परिवेश के लिए संभवतः यह अहम विषय होना चाहिए कि वे पूर्वार्जित संस्कारों की परंपरा को आगे से आगे बढ़ाएं।

विशेषकर भारत जैसे देश में संस्कारों की विरासत सदैव गौरव और गरिमा की प्रतीक रही है। संभवतः इसी बलबूते पर ही हम न सिर्फ अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखने में कामयाब रहे हैं वरन बहुत कुछ हारने के बावजूद भी जीत हमारे सामने खड़ी दिखाई देती है। ❐

उजालों की ओर

समणी सत्यप्रज्ञा

उजालों से भरी दुनिया
दृष्टि से देखते रहना।
कभी जो अस्त न होता
वो सूरज सामने रखना।।

विचारों के विविध पथ हैं,
कहीं पर भी न इति-अथ है,
प्रगति से पूर्व द्रष्टा बन,
सत्य को सामने रखना।
कभी जो अस्त न होता,
वो सूरज सामने रखना।

जिंदगी जो संवारी है,
मौत की भी तो बारी है।
मगर प्रस्थान से पहले,
लक्ष्य को सामने रखना।
कभी जो अस्त न होता,
वो सूरज सामने रखना।।

जिंदगी फूल बन जीएं,
अवसरों का अमिय पीएं,
समय के साथ ही फल के,
समर्पण को सामने रखना।
कभी जो अस्त न होता,
वो सूरज सामने रखना।

❐

स्वतंत्रता ने स्व-तंत्र को जगा दिया

स्वतंत्रता हमारा स्वभाव है। हम जब भी स्वभाव से हटते हैं, विभावों की भीड़ हमारे इर्द-गिर्द समस्याओं को खड़ा कर देती है और तब हम स्वतंत्रता का सही मायना भूल बैठते हैं। प्रतिबद्धताओं की पीड़ा भोगकर भी उसमें सुख ढूंढ़ते हैं। बुरे परिणामों का अंदाज होते हुए भी उन्हीं कार्यों की स्वीकृति के लिए विवश हो जाते हैं।

देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बहुत कुछ बदला मगर चेहरा बदलकर भी दिल नहीं बदल पाया। विदेशी सत्ता की बेड़ियां टूटीं, पर बंदीपन के संस्कार नहीं मिट पाए। हमने चलने के लिए बैसाखियां पकड़ लीं। जीने के लिए दूसरों के तौर-तरीके अपना लिए। औरों के विचार, भाषा, शैली उधार ले लिए। हमने कभी स्वयं में छिपी क्षमताओं को चुनौती दी ही नहीं। आजादी पाकर भी इस के आदी न बन सके। अतीत की स्मृतियां और भविष्य की कल्पनाएं हमें उपलब्धिभरा वर्तमान न पकड़ा सकीं।

आज अनगिनत समस्याओं के कगार पर देश खड़ा है। अपराधों और हिंसक वारदातों के परिणाम से देश का हर आदमी सहमा-सहमा-सा है। मर्यादाओं के प्रति आस्था लड़खड़ाने लगी है। संस्कृति और परंपरा मात्र आदर्श बनकर रह गए हैं। जीवन-मूल्यों की सुरक्षा में कानून और न्याय कमजोर पड़ने लगे हैं। राजनीति में घुस आए स्वार्थी तत्त्वों ने लोकतांत्रिक प्रतिष्ठा को धूमिल कर दिया है। सुविधावाद से जन्मी आकांक्षी मानसिकता से देश का आर्थिक ढांचा चरमरा गया है। विकास की योजनाएं, नीतियां, सिद्धांत और संकल्प सही परिणामों के साथ सही लोगों तक नहीं पहुंच पा रहे हैं।

प्रगति की प्रयत्नशील दौड़ में हम पिछड़ गए, क्योंकि हम 'स्व-तंत्र' से जुड़कर रह गए। हमने सिर्फ वही सोचा और वही किया जो व्यक्तिगत उपलब्धियों के लिए जरूरी था। असफल, अपरिणामी स्वतंत्रता ने हमें निराशा, निष्क्रियता और अपंगता भी दी है। हमारी आंखें संस्कृति, परंपरा, समृद्धि और साख की ढहती दीवारें देख अफसोस तो करती हैं मगर फिर नई ईंटों से बुनियादी दीवारें खड़ी करने के लिए उनमें पुरुषार्थ, साहस, आत्म-विश्वास और दृढ़ संकल्प का भाव नहीं जागता।

जरूरत है खो जाने के दुःख को भूलकर नए सुख की सर्जना में जुट जाएं। अन्यथा कर्तव्य और दायित्व की सीमाओं से बंधी एक पीढ़ी की भूल कई पीढ़ियों की नींव खोखली कर देगी। यदि उड़ने से पहले ही आने वाली पीढ़ी के पंख काट दिए गए तो वह उन लोगों को कभी माफ नहीं कर सकेगी।

ढलान से बहते पानी के तेज प्रवाह को रोकना बहुत कठिन है। इसी तरह तीव्र गति से विपरीत दिशा में मुड़ती अच्छाइयों की तेज रफ्तार को रोकने में अकेला सक्षम नेतृत्व भी भला क्या कर सकेगा? आज चाहिए एक साथ कई हाथ उठें, एक साथ कदम-से-कदम मिलाकर आगे बढ़ें। तभी आने वाला भविष्य दीए से दीया जलाकर सर्वत्र रोशनी बिखेर सकेगा।

सूर्य संबोधि का

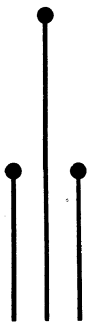

मुक्त पाखों ने भरी उड़ानें,
एकता का मनुज को संदेश देने।
लक्ष्य ऊंचा, हो सभी का सही चिंतन,
राष्ट्रहित निर्माण में यह प्रण जगाने।।

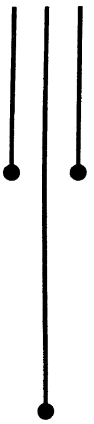

साध्वी शुभप्रभा

मानचित्र विश्व की भौगोलिकता–देश, राज्य, शहर, समुद्र, पहाड़, सरिता, हवाई मार्ग, रेल मार्ग, सड़क मार्ग, जलवायु, मौसम का मात्र परिचय-पत्र ही नहीं होता, अपितु वह हमारी सांस्कृतिक एकता और चारित्रिक विभुता की गाइड बुक है तथा विभिन्नता में एकता का संसूचक भी।

भारतीय संदर्भ में इस बिंदु पर विचार करें तो भारत एक अखंड प्रभुसत्ता संपन्न विशाल प्रजातांत्रिक देश है, जिसका अपना संविधान है, अपनी संस्कृति है, अपनी परंपरा है। यहां अनेक राज्य हैं। अनेक भाषाएं हैं। अनेक धर्म संप्रदाय हैं। अनेक जातियां हैं। सबके रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार आदि अपने-अपने हैं। सबकी अपनी जीवनशैली है। फिर भी सब एक राष्ट्रीय भावना के साथ जुड़े हुए हैं। इसी राष्ट्रीय भावना के कारण भारत परतंत्रता की बेड़ियों से छुटकारा पाने में सफल हो गया जिसमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की अहिंसक जुझारू वृत्ति, पंडित नेहरू की राजनैतिक सूझ-बूझ, सरदार वल्लभभाई पटेल के सामयिक निर्णय, लोकमान्य तिलक के अमर उद्घोष एवं सुभाषचन्द्र बोस, भगतसिंह, चंद्रशेखर आदि की राष्ट्रभक्ति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

14 अगस्त की मध्यरात्रि को 'भारत स्वतंत्र' की उद्घोषणा होते ही भारतीय जनमत में एक साथ सुख, शांति, आशा और रोशनी के चिराग जल उठे। संसद भवन पर लहराता प्यारा तिरंगा राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गया। स्वतंत्रता के उस सुनहले पल में मानो दूध जैसे उजले पृष्ठ पर केशर के अक्षर अंकित हो गए हों एवं चावल के दानों पर करोड़ों देशवासियों के भाग्य की बारीक रेखाएं खींची जाने लगी हों।

उस समय सबने बड़ी उमंग के साथ राष्ट्र निर्माण का सपना देखा। विशालकाय योजनाएं बनीं। सब स्वतंत्रता की सांस ले सकें, इसके लिए प्राथमिक संसाधन जुटाने के लिए क्रियान्विति के हल चलाए जाने लगे। पर अफसोस! भीतर बैठे अहंकार, ममकार, स्वार्थी और संग्रही मनोवृत्ति के ऊबड़-खाबड़पन ने राष्ट्रीय एकता या राष्ट्रीय उन्नयन के समक्ष खतरे खड़े कर दिए और ये खतरे नए-नए परिवेश में आज भी समुपस्थित हैं। यही कारण है कि इतने वर्षों की संवैधानिक स्वतंत्रता के बावजूद भी हम राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण नहीं कर पाए। हम स्वतंत्रता के वास्तविक अर्थ को आत्मसात नहीं कर पाए।

स्वतंत्रता यानी आत्मानुशासन। परकीय शासन से मुक्त जीवन प्रणाली। यद्यपि बाह्य शासन से आज हम मुक्त हैं, किंतु अपनी अंतहीन इच्छाओं के गुलाम बने हुए हैं। अपने शरीर के वशवर्ती हैं। केवल इंद्रियसुख के संसाधन जुटाने में लगे हुए हैं। अपनी जिह्वा पर

भी हम नियंत्रण नहीं कर पाए हैं तथा मन के दास बने हुए इतस्ततः परिभ्रमण कर रहे हैं। जब तक अपने पर अपना अनुशासन की विवेक चेतना का जागरण नहीं होगा, तब तक असली स्वतंत्रता के हम हकदार नहीं बन पाएंगे और न ही राष्ट्रीय एकता की भूमिका प्रशस्त होगी।

कहने को तो हम बहुत जोर-शोर के साथ आज भी कहते हैं कि कश्मीर से कन्याकुमारी तक भारत एक है, किंतु आत्मदर्शन की पीठिका पर अवस्थित होकर जब सर्वत्र अपनी नजरें पसारते हैं तो दृष्टिपथ में आता है कि कश्मीर की केशर की क्यारियों एवं सुरम्य घाटियों से अलगाववाद का धुआं उठ रहा है। पंजाब की आब यमुना तट पर सोयी है। गांधी का गुजरात हिंसा की लपटों से घिरा है। असम और बिहार भयाक्रांत हैं। कब मौत का पैगाम आ जाए, कहा नहीं जा सकता। दलगत राजनीति के कुहासे से सत्य-सूर्य आच्छादित हो रहा है। मंडल-कमंडल सब अपनी साख जमाने में लगे हैं। हनुमान लंका नहीं, राम की अयोध्या जला रहा है। मंदिर-मसजिद जैसे पवित्र स्थल शरण्य-वरेण्य नहीं, अहं के अखाड़े बन रहे हैं।

इतना ही नहीं, स्वतंत्र भारत में आज कानून इतना कीमती हो गया है कि सामान्य आदमी तो उसे पाने की हिम्मत ही नहीं जुटा पा रहा है। बेगुनाह को इंसाफ नहीं मिल रहा है। शिक्षालय पैसा कमाने की टकसाल बन चुके हैं। नेता इंद्रियजयी नहीं, वोटजयी और सत्ताक्रयी बन गए हैं। नंगी और उत्तेजक फिल्मों ने मर्यादा, शालीनता को ताक पर रख दिया है। सस्ते और घासलेटी उपन्यासों ने युवा मानसिकता को विकृत बना दिया है। समाचार पत्र काली स्याही से तो छपते हैं, पर हर खबर का अपना अलग रंग है। उसमें हेरोइन का भूरा, बलात्कार का नीला, हिंसा का लाल, दुश्मनी का हरा, अनुशासनहीनता का पीला और दहेज का काला रंग है। कल्पना करें–क्या ऐसे रंगों में रंगी खबरें स्वस्थ वातावरण का निर्माण कर पाएंगी? वस्तुस्थिति तो यह है कि इमारतें ऊंची उठती जा रही हैं और आदमी बौना हो रहा है। आयातीत संस्कृति की नकल ने हमारी मौलिकता के आगे प्रश्नचिह्न खड़े कर दिए हैं। पश्चिम के फ्रेम में मढ़ी तसवीर में हम अपना अस्तित्व तलाश रहे हैं। यही कारण है कि भौतिक एवं यांत्रिक प्रगति के युग में हिमालय की चोटी पर चहलकदमी करता आदमी आज शांति की प्राणवायु प्राप्त करने के लिए किस कदर बेचैन है, यह जग-जाहिर है।

ऐसी परिस्थितियों में अपेक्षा है नया नक्शा बनाने की। जिसमें प्राकृतिक परिदृश्यों के साथ नए मानव निर्माण की हेड लाइन हो। भारतीय मानस की प्राची में संबोधि का सूर्य उगे। जिसकी सहस्र किरणें–शिक्षा, साधना, साहित्य, शोध, संस्कृति, सत्ता, सेवा, संगठन आदि को प्राणवान बना सकें। स्वहित के साथ-साथ परहित की चेतना को उद्‌बुद्ध कर सकें। अतीत के गौरवपूर्ण अंश को पुनर्जीवित कर सकें तथा महावीर की अहिंसा, शंकर का अद्वैत भाव, बुद्ध की करुणा, राम की मर्यादाशीलता, कृष्ण का निष्काम कर्मयोग, सूर, तुलसी और मीरा की इष्ट के प्रति एकात्मता का पुनर्दर्शन और पुनर्जन्म हो सके।

आज हमारे देश में अनेक मंत्रालय हैं, पर मानव के चरित्र की देखभाल करने वाला एक भी मंत्रालय नहीं है। आज ऐसे मंत्रालय की बहुत अधिक अपेक्षा है जो व्यक्ति-निर्माण का संकल्प लेकर सुपर बॉडी के रूप में काम करे। आचार्यश्री तुलसी के शब्दों में नए मानव का मॉडल इस प्रकार हो सकता है यथा–'जो किसी बेगुनाह की हत्या न करे। किसी को अस्पृश्य न माने। किसी संप्रदाय विशेष के लिए जेहाद न छेड़े। सत्ता प्राप्ति के लिए वोटों का क्रय-विक्रय न करे। व्यसन मुक्त जीवन जीए। पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति सजग रहे, इत्यादि।' वस्तुतः ऐसा मानव ही राष्ट्रीय अस्मिता को सुरक्षित रखने में सफल होगा, ऐसा विश्वास है।

यह सर्वविदित तथ्य है कि भारत का बुनियादी तत्त्व है–अध्यात्म। गुरुदेव श्रीतुलसी के शब्दों में–अध्यात्म का अभाव, अर्थ की प्रधानता, मौलिक चिंतन की कमी, सुविधावाद की आंधी, पश्चिमी प्रभाव और 'निज पर शासन : फिर अनुशासन' की विस्मृति ने देश के समक्ष अनगिनत समस्याओं का पहाड़ खड़ा कर दिया है, पर निराश होने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय मिट्‌टी में आज भी वही आर्द्रता है। यहां आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व के निर्माण का अंकुरण संभव है। अपेक्षा है–'सत्यमेव जयते' के साथ-साथ 'श्रममेव जयते' के स्वर को बुलंद करने की। तभी तिरंगे झंडे की पट्टियों के ये तीन रंग–समृद्धि, पवित्रता, शौर्य एवं अनाम उत्सर्ग के सच्चे प्रतिनिधि बन पाएंगे। ❐

स्वतंत्रता– मूल्यों को धुंधलाने का दौर

ललित गर्ग

हमने आजादी मिलने के साथ चलना शुरू किया और चलते-चलते यहां तक आ पहुंचे हैं। जिन मूल्यों और विश्वासों के साथ हमने चलना शुरू किया, उनका क्या हुआ? आज यह क्यों लग रहा है कि लोकतंत्र के सारे मूल्य डगमगा रहे हैं, एक अजीब तरह की गतिहीनता है। दृष्टिहीनता है। कई सवाल ज्यादा चटक होकर उभरे हैं और उनके जवाब उतने ही धुंधले हो गए हैं, अचानक समय के जिस संधि-बिंदु पर हमारा पूरा समाज आ खड़ा हुआ है, वहां यह अपरिहार्य हो गया है कि कुछ मुद्दों, कुछ मान्यताओं पर विचार हो, ताकि दिशा-हीन, गति-हीन एवं दृष्टि-हीन हो जाने को अभिशप्त न हो जाएं।

आज भारत जिस दुविधा में है, और जो खतरा सामने है, उसकी साफ समझ और उस पर ईमानदार और निर्भय विचार कहीं दिखाई नहीं देता। इससे बड़ी विडंबना और क्या होगी कि हम समय-समय पर विदेशी-अंग्रेजी कंपनियों को भारत आने का न्योता देते हैं। अंग्रेजों से भारत छुड़वाकर जो आजादी हम पाना और जो देश हम बनाना चाहते थे, वह न सिर्फ दूर चला गया बल्कि हम एक बार पुनः अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों की गुलामी को स्वीकार करने जा रहे हैं, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का फैलता जाल अतिशीघ्र हमें पुनः गुलामी की सांकलों में जकड़ लेगा।

यह दुःखदायी ही है कि जिस जगह के चुटकी भर नमक को खाकर गांधी ने स्वतंत्र देश का नमक जगाया, वही नमक बनाने के लिए कारगिल जैसी विदेशी कंपनी को न्योता दिया जाए। यह भारत छोड़ो की भावना को ही भारत से भगाना और विदेशी को बुलाना है। राकेट इंजन बनाने की प्रौद्योगिकी तो हमें मिलती नहीं। इसलिए हम विदेशी आकर्षण में उलझ रहे हैं। भारत को बंधक रखवाने की कोशिशें हैं, अंग्रेज भारत को ऐसे ही बनाए रखना चाहते थे और हमारे राजनेता अपने स्वार्थों एवं हितों के चलते यह सब होने दे रहे हैं।

अब तक अंग्रेज हमें हिंदू-मुसलिम जैसी जातीयता एवं सांप्रदायिकता की आग में झुलसते देखकर खुश होते थे, अब वे अंग्रेजी कंपनियों के भारत में बिछते जाल को देखकर खुश हो रहे हैं और ये स्थितियां एक स्वतंत्र राष्ट्र के लिए दुर्भाग्यपूर्ण होती है।

महत्त्वपूर्ण दिवसों पर अवकाश घोषित होते हैं, यह इंगित करता है कि हमारा इतिहास घर बैठा टांगें पसारे टी.वी., वी.सी.आर. देख रहा है अथवा सबेरे अलसा कर देर से उठने वाला बन चुका है। यह इतिहास पांच हजार साल पुराना नहीं, जिस पर खुदाई के बाद विशेषज्ञ अनवरत बहस करते रहें। आज भी बुजुर्गों से इसके बारे में सुना जा सकता है, पर आजादी के चश्मदीद गवाहों को अब तक यह पता चल चुका है कि हमारी रुचि इन वृत्तांतों में नहीं, वरन

कार्यालयों, बैंकों, फैक्टरियों के ताले बंद रखने में है। हमारी संस्थाएं आदरवश बंद हैं, पर क्या यह आदर अभिव्यक्ति का सार्थक तरीका है? आजादी के बाद संभवतः पहली बार ऐसा लगता है कि हमारे तमाम सिद्धांतों और देखे जा सकने योग्य सपनों की भाषा का विसर्जन हो गया है। जनता का चरित्र गिरावट की चरम पराकाष्ठा को छू रहा है, अब जनता देश-भक्ति की कविता नहीं, 'चोली के पीछे क्या है' के एक करोड़ आडियो कैसेट खरीद कर सुनती है, क्या यही राष्ट्रभक्ति है?

दंगा, आतंकवाद और सांप्रदायिकता की स्वीकृति–तीनों चीजें सिद्ध करती हैं कि सृजनात्मकता से हमारा विश्वास उठ चुका है, विनाश एवं विध्वंस में ही हम विजय खोज रहे हैं। वह अयोध्या में दिखी–लंपटाई हुई, वहशी और आक्रामक, बदला और सिर्फ बदला लेने के लिए इतिहास को उलटती-पलटती हुई। एकदम एक्शन के दृश्य देते हुए। फिर वह दंगों के रूप में, बम विस्फोटों के रूप में दिखी। लोगों को जिंदा जलाती, घरों को लूटती, बलात्कार करती। इन घटनाओं से स्पष्ट है कि भारत की राजनीति और समाज दोनों गहरे रूप में उत्तप्त है और हिंसा का लावा उच्छृंखल रूप से फूट रहा है। आतंकवाद के एक लंबे और खूनी दौर से हम अभी-अभी गुजर रहे हैं। क्या पंजाब और क्या असम सभी प्रांत अशांत हैं। कश्मीर अब भी सुगबुगाहट से गुजर रहा है। आज भी ताजा घटनाओं से साफ है कि हिंसा के स्रोत सूखे नहीं हैं। हमारे समाज में अहिंसा के मूल्य क्यों गिरे, कैसे गिरे, यह पूछना जरूरी है।

हमारे समाज की टूटन एवं त्रासदीपूर्ण स्थिति का इंगित इससे भी मिलता है कि, न केवल गरीबी और अभाव गंभीर रूप से बने रहे हैं बल्कि जीवन-मूल्यों का जबरदस्त पतन हुआ है। देश के लोगों के प्रति, अभावों एवं वेदनाओं के प्रति जहां संवेदनशीलता बढ़ रही है वहीं पश्चिमी जीवनशैली के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। जिसके सामने नैतिक मूल्य तुच्छ लगने लगे हैं। इससे अनेक सामाजिक विकृतियां बढ़ रही हैं। जिनकी सबसे असहनीय अभिव्यक्ति बच्चियों की भ्रूण हत्या में और वधुओं की दहेज हत्या में देखी जा सकती है।

जब तक स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े नेताओं का साया देश की राजनीति पर रहा, जीवन-मूल्य, नैतिक मूल्य बनाए रखने की मर्यादा निभाई गयी। पर आज जो नेतृत्व उभरा है, वह पश्चिमी परिवेश से बहुत प्रभावित है। इस नेतृत्व नें उपभोक्तावाद को जबरदस्त बढ़ावा दिया है। और इसी नेतृत्व का भ्रष्टाचार इतना प्रचारित हो चुका है, वह अब लोगों के सामने कोई आदर्श ही प्रस्तुत नहीं कर पा रहा है। आदर्श की स्थिति स्थापित करने के लिए मदर टेरेसा, आचार्यश्री तुलसी, आचार्यश्री महाप्रज्ञ, मेघा पाटकर, बाबा आमटे जैसे लोगों और इनके प्रयासों से ही एक नए, समतामय और मानवीय मूल्यों पर आधारित समाज की रचना की उम्मीद जगती है। समता और सादगी के आदर्शों को जगाने–स्थापित करने के लिए आज एक ऐसे जन-आंदोलन की जरूरत है जो हमें आजादी की लड़ाई के सबसे अच्छे दिनों की याद करा दे। ❐

कृष्ण जन्माष्टमी पर विशेष आलेख

रसेश्वर कृष्ण

पंडित अक्षयचन्द्र शर्मा

भगवान कृष्ण के अथ से इति तक के संपूर्ण जीवन की विशेषताओं को समेटे यह आलेख लेखक का शोधपरक अध्ययन, गहन-गंभीर ज्ञान और प्रखर लेखन की कला का प्रमाण है।

कृष्ण जन्माष्टमी पर सुधी पाठकों के लिए प्रस्तुत यह आलेख कृष्ण को विविध रूपों में देखने और समझने का मौका देगा तथा जन्म की व्याख्या में सिमटा उनका विराट दर्शन नई चेतना जगाएगा।

कृष्ण का जीवन-चित्र विविध वर्णों से रंजित है। ये वर्ण, ये रंग इतने चटकीले, इतने धूमिल, इतने विरोधी हैं कि आश्चर्य–यह चित्र बदरंग क्यों नहीं हुआ? विविध विरोधी वर्णों से रंजित यह चित्र विश्व का सर्वोत्तम सुरंगा चित्र है, इन्द्रधनुषी सतरंगी चित्र, जिसमें एक ओर धरती की सोंधी गंध है, हरितच्छटा है, तो दूसरी ओर शोभित है, गगनमंडल में तना हुआ 'रत्नाछाया व्यतिकर' आखंडल का धनुखंड। चित्र में भव्यता और दिव्यता है। इसमें ब्रह्म-तेज एवं क्षात्र-शौर्य, इसमें अनुराग और विराग, इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति, इसमें त्याग और भोग, इसमें तारुण्य का तेज और प्रौढ की परिपक्वता, एक साथ कौशल से चित्रित है। सभी रंग यथास्थान, कहीं भी तूलिका असंतुलित नहीं, कहीं भी रेखामात्र का असंयमित अंकन नहीं। यह चरित वंदनीय है, स्यात अनुकरणीय नहीं।

कृष्ण के इस चरित से आचार्य धन्य हो गए। उन्हें कृष्ण दीखते हैं–साक्षात भगवान, वे अवतार नहीं, अवतारी है, 'कृष्णस्तु भगवान स्वयं' निर्गुण। निराकार ब्रह्म में जो आनंद है, वह गणितानंद है, उस आनंद को गिना जा सकता है, पर कृष्ण! ये तो अगणितानंद है, सच्चिदानंद घन-आनंद के अनंत सागर, जो मोद-प्रमोद युक्त हैं, जिनकी लीला का विलास है, यह अखिल ब्रह्मांड। जो पुरुषोत्तम हैं।

कृष्ण के इस विराट चित्र को चित्रित करने में सहस्राब्दियों की जीवनव्यापी लौकिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं कलात्मक साधनाएं, आराधनाएं एवं कल्पनाएं समाहित हैं। 'भगवान के अवतार की या महापुरुष की शक्तियों, गुणों और कार्यों का वर्णन करने में लेखकों, कवियों, साहित्यिकों, कलाकारों, भक्तों, संत-महंतों, पौराणिकों, कथावाचकों आदि ने अपने-अपने अनुभव, अपनी-अपनी प्रतिभा और अपनी-अपनी कला का चमत्कार उंडेला है। इसका प्रकार वसुदेव-देवकी का जेल में पैदा हुआ बेटा, गोकुल के नन्द-यशोदा जैसे अहीर के घर में रह कर गायें चराना, ग्वालबालों और बालिकाओं के साथ खेलकूद करता हुआ छोकरा आज परब्रह्म परमात्मा का पूर्ण अवतार

होकर हमारे सामने आ गया है। यह हमारा इतना बड़ा अहोभाग्य है और हम तो क्या, खुद श्रीकृष्ण भी उन भक्तों और कवियों पर बलि जाएंगे और उनके सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

स्वर्गीय चिंतामणि विनायक वैद्य की सम्मति में श्रीकृष्ण जैसा सर्वतोपरि अद्वितीय पुरुष भारत में तो ठीक, किसी भी देश में आज तक पैदा नहीं हुआ। अलौकिक पराक्रम, अप्रतिम बुद्धिमत्ता, असामान्य स्वार्थ-त्याग इत्यादि सद्गुणों के कारण श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व ऐतिहासिक ही नहीं, बल्कि काल्पनिक व्यक्तियों में भी शिरस्थानीय है। नेपोलियन के जैसा पराक्रमी बुद्धिमान इतिहास में दूसरा नहीं मिलता, परंतु उसकी स्वार्थ-परायणता भी उसी तरह बेहिसाब थी। सार्वभौम बन जाने पर भी अंत में रंक होकर जेल में उसकी मृत्यु हुई। इसके विपरीत श्रीकृष्ण ने अपने जीवन में जो-जो ठाना, सब कर दिखाया। बड़े-बड़े युद्धों में और राजनीतिक समस्याओं में उनकी बुद्धिमत्ता से ही विजय प्राप्त हुई। स्वार्थ तो उन्हें छू तक नहीं गया था। नेपोलियन का पराक्रम, वाशिंगटन का स्वार्थ त्याग, ग्लैडस्टन, बिस्मार्क प्रभृति राजनेताओं का नय श्रीकृष्ण में एकत्र हो गए थे। और सबसे बड़ी बात यह कि श्रीकृष्ण जैसे राजनीति में अग्रणी थे, वैसे ही परमार्थ में भी थे।

बुद्ध, ईसा, मोहम्मद इत्यादि धर्म-संस्थापकों में उनकी गिनती की जा सकती है। ईसा ने सौजन्य से, बुद्ध ने बुद्धिवाद से तथा मोहम्मद साहब ने अपने निश्चय के बल पर धर्म-प्रसार किया। श्रीकृष्ण में निश्चय, सौजन्य और बुद्धिवाद तीनों का सम्मिलन हुआ था। बल, सौंदर्य, बुद्धि, पराक्रम, साहस, नए निश्चय, शांति, सौजन्य, ज्ञान, स्वार्थ-पराङ्मुखता इत्यादि अनेक लोकोत्तर गुण भोगैश्वर्य सहित श्रीकृष्ण में थे। श्रीकृष्ण को हम भारतीय आर्य, जो परमेश्वर का पूर्णावतार मानते हैं, उसका कारण यही है। श्री रामचन्द्र पराक्रम और नीति-मर्यादा के उत्कर्ष में नरशिरोमणि थे, परंतु रामावतार में ज्ञान का उपदेश भगवान ने स्व-मुख से नहीं दिया। श्रीकृष्ण ने अपने उपदेशामृत से भारतवर्ष के हृदयपटल पर ऐसा अमिट सिक्का जमा दिया कि उसे पोंछ डालना संभव नहीं है।

श्रीकृष्ण के उपदेश और चरित्र ने भारतीय इतिहास को जो मोड़ दिया, उसे बदला नहीं जा सकता। जिसके कान में भगवद्गीता की वंशीध्वनि, ज्ञान-रव पड़ गया है उसे फिर दूसरी ध्वनि मधुर लग ही नहीं सकती। आर्यों के वेदान्त-ज्ञान रूपी दुर्ग में भगवद्गीता मानो शतध्वनि तोप है। उसके प्रहार के बाद इस किले पर दूसरा आक्रमण हो ही नहीं सकता। यही नहीं, बल्कि इस दिव्य अस्त्र के सहारे भारतीय आर्यों का तत्त्वज्ञान सारे संसार को जीतता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण के प्रति हम भारतीय आर्य जो असीम आदर रखते हैं, वह उचित और सकारण ही है। और आश्चर्य तो यह है कि हमारी आर्य-भूमि के सभी प्रकार के लोगों में श्रीकृष्ण समान रूप से प्रिय और पूज्य है।

वैदिक लोग 'हरि ॐ' कह कर वेद-पाठ करते हैं। कर्मठ लोग कर्म के आरंभ में परमेश्वर के जो चौबीस नाम लेते हैं, उनमें श्रीकृष्ण का ही नाम अंतिम है। योगी लोग श्रीकृष्ण को योगेश्वर मानते हैं, भक्तिमार्गी उनका भजन करके भगवच्चरण में लीन होते हैं। मथुरा-वृंदावन में तो श्रीकृष्ण नाम की ध्वनि से घर-बार, मंदिर, घाट, पृथ्वी-आकाश गूंज रहा है। क्या महाराष्ट्र, क्या बंगाल, क्या मद्रास और क्या गुजरात, सभी जगह भावुक भक्त श्रीकृष्ण का संकीर्तन करते और नाचते हैं और ध्यानस्थ हो जाते हैं। सारे भारत में आर्य स्त्रियों के मुख से श्रीकृष्ण की ही बाल-लीला के गीत-भजन सुनाई देते हैं। सुबह उठते ही वे चक्की पीसते-पीसते, बच्चों को जगाते हुए, श्रीकृष्ण के ही गीत गाती हैं। भारतखंड के सभी आर्य-धर्मी, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, धनी-गरीब, नागर-ग्राम्य, पंडित-मूर्ख, संस्कृत-असंस्कृत, संसारी-परमार्थी, सभी के विचारों और उच्चारणों में श्रीकृष्ण का ही नाम और चरित्र समाया हुआ है।

कृष्ण में सोलह कला की अभिव्यक्ति थी, अर्थात् मनुष्य का जो मस्तिष्क मानवीय विकास का पूर्णतम आदर्श बन सकता है, वह हमें कृष्ण में मिलता है। नृत्य, गीत, वादित्र सौंदर्य, वाग्मिता, राजनीति, योग, अध्यात्म, ज्ञान, सबका एकत्र समवाय कृष्ण में पाया जाता है। गो-दोहन से लेकर राजसूय यज्ञ में ब्राह्मणों के चरण धोने तक तथा सुदामा की मैत्री से लेकर युद्ध भूमि में गीता के उपदेश तक उनकी ऊंचाई का एक पैमाना है, जिस पर सूर्य की किरणों की रंग-बिरंगी पेटी (स्पैक्ट्रम) की तरह हमें आत्मिक विकास के हर एक स्वरूप का दर्शन होता है।

कृष्ण के उच्च स्वरूप की पराकाष्ठा हमारे लिए गीता में है। सब उपनिषद यदि गाएं हैं तो गीता उनका दूध है। इस देश के विद्वान किसी ग्रंथ की प्रशंसा में इससे अधिक और क्या कह सकते थे? गीता विश्व का शास्त्र है, उसका प्रभाव मानव जाति के मस्तिष्क पर हमेशा तक रहेगा। संसार में जन्म लेकर हममें से हर एक के सामने कर्म का गंभीर प्रश्न बना ही रहता है। जीवन कर्ममय है, संसार कर्मभूमि है। गीता उसी कर्मयोग का प्रतिपादक शास्त्र है। कर्म का जीवन के साथ क्या संबंध है और किस प्रकार उस कर्म का निबटारा करने में मनुष्य अपने अंतिम ध्येय और शांति को प्राप्त कर सकता है, इन प्रश्नों की सर्वोच्च मीमांसा काव्य के ढंग से गीताकार ने की है। अतएव यह ग्रंथ न केवल भारतवर्ष बल्कि विश्व साहित्य की वस्तु है।

जीवन के छलकते प्याले को अंतिम बूंद तक पीने वाले कृष्ण ने बहुत लंबी आयु प्राप्त की–120 वर्ष। इस जीवन के मधुर मादक प्याले को छलकते प्याले को–ये अंतिम बूंद तक, तलछट तक खूब गहराई से सघन सान्द्रता से झूमकर, गाकर, नाचकर, हंसकर पीते रहे–जीवन के कटुतिक्त विषाक्त कण–पीयूष कण बनाते हुए पीते रहे, क्षण में जीना, वर्तमान में जीना, पूर्ण जीना–यही कृष्ण है। न भूत की स्मृतियों का दुःसह भार, न पश्चात्ताप, न अतीत का चर्वित चर्वण, न भविष्य की आशंकाएं, न भावी के मीठे सपने बस, वर्तमान–न, वर्तमान का यह भागता क्षण–इसी को कृष्ण ने इतनी गहराई से पकड़ा कि वह काल के निषंग से छिटक कर शाश्वत बन गया–जीवन की अनंतता, विराट् विभुता इस क्षण में समाहित हो गई। जैसे बिंदु में सिंधु। ये क्षण ज्ञान के आलोक से आलोकित, रस से सिंचित और कर्म की ऊर्जा से प्रोद्भासित थे। इसी में कृष्ण की समग्रता, संपूर्णता और अक्षयता है।

जीवन मानो एक लीला है, एक महोत्सव है, एक नृत्य है–आनंद का, मोद-प्रमोद का–विशुद्ध निराविल घनरूप! आज भी भारत का गांव-गांव उसी बांसुरी की धुन पर नृत्य विभोर है और उसी का सुमधुर स्वर–दूर-दूर दिगन्तव्यापी बुद्धि, विज्ञान और तर्क से जड़ क्षितिजों को मुखरित कर रहा है।

मुड़कर पीछे झांका तक नहीं

जब ब्रज को छोड़ा तो ऐसा छोड़ा–जैसे वह कुछ नहीं था, फिर मुड़कर पीछे ताका तक नहीं। यही कृष्ण का सौंदर्य है, यही वैशिष्ट्य है। मथुरा में कंस-वध, फिर गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण और फिर अकस्मात् मथुरा से पलायन–सुदूर सिंधु तट पर नए उपनिवेश द्वारकापुरी का निर्माण। फिर एक क्षण का विश्राम नहीं। भारत, अखंड भारत के स्वप्न-द्रष्टा कृष्ण–छोटे-छोटे क्षुद्र मांडलीक महत्त्वाकांक्षी राजाओं का, आततायियों का विनाश कर बृहत्तर भारत के निर्माण में जुट जाते हैं। उनका चार श्वेत अश्वों से जुता स्यन्दन रात और दिन, दिन और रात अविश्रांत गति से बीहड़ वनों, गिरि-कांतारों और ऊबड़-खाबड़ घाटियों को सम करता–नए प्रशस्त पथों का निर्माण करता, घूमता रहा। और फिर धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में गीता का गुरु-गंभीर घोष!

कृष्ण का चरित्र-चित्र हमारे सामने उभरता है, उसमें इतना वैशिष्ट्य है कि हम विस्मित, अवाक् रह जाते हैं। कभी गायें चराते हैं, कभी बांसुरी बजाते हैं, कभी नाचते गाते, रूठते मचलते मिलते हैं, कभी

दुष्टों का संहार करते मल्ल बन शौर्य प्रदर्शन करते हैं–सभी जगह अनासक्त। चरण प्रक्षालन करना, जूठे पत्तल उठाना, रथ हांकना और अग्र पूजा के रूप में सर्वोच्च सम्मान पाना–पर, सभी जगह एक से, एक रस, निर्विकार, निःस्पृह और असंग। विपुल भोग रागों के मध्य पद्म-पत्रवत् निर्लिप्त। मृत्यु एवं नाश के महातांडव के मध्य भी, वही निर्वात निष्कम्प दीप-शिखावत्–अलोल, अडोल, स्व-स्वरूप में स्थित।

जब भी मां बेटे को याद करती है, और कोई याद नहीं आते। कितने ऋषि-महर्षि, संत, धीर-वीर, कितने अवतार, बुद्ध-तीर्थंकर–क्या ये बच्चे नहीं थे, क्या उनके इनकी माताएं नहीं थीं? सभी कुछ था, पर कहां थे मां के नेह भरे नैन, जो अपने बालक की केलि-क्रीड़ाओं में, उनके तोड़-फोड़ में, उनकी शरारतों और नटखटपन में तन्मय होकर रस ले, अपने को भूल जाए और न्योछावर कर दे स्वर्ग-अपबर्ग को? पर ऐसा कहां? हमारा साहित्य ऐहिक जीवन की उल्लासभरी रंगरलियों से, धरती की स्वस्थ सोंधी गंध से दूर स्वर्ग की छलना में खोया रहा, मुक्ति के व्यामोह से ग्रस्त था, या फिर अस्वास्थ्यकर भोग-पंक से रुग्ण।

मां तो बस एक ही हुई–जसोदा मैया और बालक एक हुआ–कुंवर कन्हैया! बचपन आए, और बच्चा झूले पर न झूले, घुटनों के बल न रेंगे, धूल में न खेले, तोड़-फोड़ न करे, शरारत न करे, आपस में धक्कम-धक्का न करे, लुकने-छिपने का खेल न खेले, न झूठ, न शरारत, न बहाना, न शिकायत, न रूठना, न झगड़ना–और उनमें राष्ट्र तन्मय होकर आनंद न ले, तो फिर राष्ट्र में उमंग, उत्साह कहां, ताजगी कहां, सरलता कहां, नित नूतन स्पंदन कहां!

आज कहीं कृष्ण होते, तो माता-पिता उससे तंग आ जाते, हमारे विद्यालय उसे प्रॉब्लम चाइल्ड–समस्या-बालक घोषित कर देते और किसी मनोविश्लेषक की प्रयोगशाला में उसका सारा बचपन ठंडा हो जाता और समाज को एक निस्तेज शांत व्यक्ति या उदरभरी विद्या के लिए दौड़-धूप करने वाला व्यक्ति मिलता। पर यह था–व्रज! बाल्य-जीवन की अनंत किलकारियों से तरंगित-महासागर।

इस मधुर बाल-लीला के बीच-बीच कितने उपद्रव होते हैं, कितनी बाधाएं, विघ्न, थोड़ी देर के लिए जरा अशांति, फिर स्वस्त्ययन-पूजा-पाठ, दान-पुण्य जीवन में वही उल्लास। पुराने दुःस्वप्नों की कहीं छाया नहीं, भविष्य की आशंकाओं का अंधेरा नहीं। बस है–वर्तमान, वर्तमान के ये क्षण, क्षण नहीं–जीवन के दिव्याक्षर हैं–जिनसे यह क्षर जीवन अक्षर बनता है और अक्षर से अतीत-पुरुषोत्तम भी।

शिकायतें उपालंभ शुरू

ब्रज से जो आनंद का सागर उमड़ा, वही आज देश के कोने-कोने में उमड़ रहा है। शताब्दियों तक का उदासी भरा चिंतन, निराशा के कुहरे में छाया हमारा धूमिल दृष्टिकोण, सब ध्वस्त-विध्वस्त। कृष्ण का नाम लेते ही, नाचता-गाता, हंसता-खेलता, एक चित्र उभरता है–जिसके सामने कहां ठहर पाता है हमारा गुरु-गंभीर, प्रशांत, निस्तरंग चिंतन? जीवन के रेगिस्तान में अचानक विनोद की लोनी लतिकाएं झूमने लगती हैं, हास्य के ठहाकों और ठिठोलियों से लगता है जीवन ही सत्य है, यह ब्रज शाश्वत है, यहां की लीला नित्य है, यमुना, गोपी, ग्वाल, रास, महारास सभी नित्य।

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् कृष्ण की वाङ्मयी काया है–शब्दब्रह्म में उनका नित्य अवतरण। एक हताश निराश जीवन को कर्म की ऊर्जा से प्रणोदित करना, ज्ञान भावना और कर्म में सामंजस्य स्थापित करना, इसी का एक सकारात्मक विधि-मुख नाम है–गीता। यह केवल सैद्धांतिक ग्रंथ–ब्रह्म विद्या मात्र नहीं है– यह है सिद्धांत के प्रकाश में एक योगशास्त्र, यानी जीने की कला का एक शानदार दस्तावेज।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

–गीता 25-28

क्योंकि मैं नाशवान, जड़, वर्गक्षेत्र से सर्वथा अतीत हूं और माया स्थित अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं, इसलिए लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं। क्षर पुरुष से अतीत और अक्षर पुरुष से उत्तम–अतः मैं पुरुषोत्तम हूं।

भारतीय मनीषा ने जितना उदात्त एवं गंभीर चिंतन किया है, उसी की मधुर अवतारणा गीता में है, जैसे हमारा ज्ञान-विज्ञान, हमारी साधना आराधना, हमारा शिव-संकल्प सभी मंदाकिनी बनकर जीवन की घाटियों में उतर आया है। दर्शन को इस प्रकार स्वच्छ मधुर अमृत धारा में बदल देना– इसी में गीता की महिमा है।

बापू ने इसी कारण कहा, गीता तो मेरी मां है। मां जैसे प्रेम पुलकित वात्सल्यमयी वाणी से अपने बच्चों को लाड-दुलार देकर आगे बढ़ाती है, संवारती सुधारती है, वही मीठी शैली गीता की है। जीवन जहां है, गीता वहीं आती है और जीवन के शोर को स्वरों में बदल देती है। जीवन-वीणा के सभी तार अपनी सीमा मर्यादा में झंकृत होकर दिव्य संगीत समारोह की संयोजना में प्रवृत्त हो जाते हैं। इंद्रियां हैं, संसार के पदार्थ हैं, भोग हैं, आकर्षण हैं–इनके बीच में यह साधना चलती है–युक्ताहार-विहार के साथ युक्त चेष्टा। पद्म-पत्र की तरह अपने को संभालना, स्थितप्रज्ञ, ज्ञानी-कर्मयोगी, ध्यानी, त्रिगुणित–सभी के आदर्शों की भव्य झांकी और निरंतर विगत ज्वर होकर 'युध्यस्व' का गंभीर मूल निनाद! यहां प्रपंच और परमार्थ के बीच सेतु बन जाता है। सर्वधर्म को गीता इतना ऊंचा पादपीठ प्रदान करती है कि वही नैष्कर्म्य सिद्धि बन जाती है।

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' पर भक्ति के बिना ज्ञान कैसे, ज्ञान के बिना भक्ति कैसी! ज्ञानोत्तराभक्ति या भक्तिमय ज्ञान, यही गीता की मूल संवेदना है–जिसके परिणामस्वरूप कर्म की मंदाकिनी स्वतः प्रवाहित होती रहती है। इस कर्म को कर्मयोग बनाना–यही गीता का प्रतिपाद्य है।

कर्म से कर्मयोग की यात्रा–अनेक साधना-सोपानों के आरोहण से संभव है। कर्म हो, कामनारहित हो, आसक्ति रहित हो, उसमें 'मैं' न हो, 'मेरा' न हो–'निर्ममो निरहंकार' हो, वह लोक संग्रह की भावना से हो, उसमें यज्ञ-भाव हो, वह कृष्णार्पण हो, वह ज्ञान से ज्योतित हो, भक्ति श्रद्धा से आर्द्र हो, अपने को निमित्त बनाकर हो, विगतज्वर हो, समाचरित हो, ज्ञानाग्नि से भस्मात् होकर अकर्म बन गया हो–तब कहीं कर्म, निष्काम कर्मयोग बनता है।

जहां योगेश्वर कृष्ण हो–ज्ञानी की शुभ्रता हो और साथ ही धनुर्धर–पार्थ हो यानी कर्ममय पुरुषार्थ हो–वहीं श्री है, विजय है, विभूति है, ध्रुवनीति है। जीवन धन्य और कृत-कृत्य है। ❐

'क्षमा' देती है तनाव से राहत

छत्रसिंह बच्छावत

पर्युषण पर्व पर जानकारी रखने के लिए यह रिसर्च महत्व रखता है कि दुनिया के नामचीन मनोविद् एवं व्यवहार विशेषज्ञ पुरखों और महापुरुषों की नसीहत पर कई रिसर्च करने के बाद इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि हम अगर खुद को परेशान करने या दिल दुःखाने वाले किसी शख्स को क्षमा करना सीख जाएं, तो सुखी और स्वस्थ जीवन जी सकते हैं। स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी एवं इंस्टिट्यूट ऑफ ट्रांसपर्सनल साइकोलॉजी के प्रोफेसर डॉ. फेज लस्किन का मानना है कि क्षमा तनाव करने की प्रवृत्ति कम करती है, हृदय की सेहत को दुरुस्त करती है, दर्द और एंग्जायटी से राहत दिलाती है, खुशी में इजाफा करती है और लोगों के साथ संबंध मजबूत बनाती है।

माफी के तरीके

'स्टैनफोर्ड फॉरगिवनैस प्रोजेक्ट' के निदेशक डॉ. लस्किन इस प्रोजेक्ट के राहत 'क्षमा' की प्रभावशीलता और क्षमा करने के आसान तरीकों पर रिसर्च कर रहे हैं। डॉ. लस्किन ने क्षमा करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करने के कुछ आसान तरीके बताएं हैं। इन तरीकों को अपना कर इसका लाभ उठाया जा सकता है।

लाभ

- खुद से वादा करना कि हम बेहतर महसूस करने के लिए जो संभव होगा, करेंगे। क्षमा की प्रवृत्ति हमारे लाभ के लिए है।
- फॉरगिवनैस, दरअसल अनुभवों को व्यक्तिगत रूप से न लेने की प्रवृत्ति है और अपनी शिकायत को भूल जाने की आदत।
- चीजों को सही ढंग से सोचें। हमारा तनाव मूल रूप से हर्ट फिलिंग से उत्पन्न हुआ है। अगर हम उस पर ध्यान देना छोड़ दें और उसे भूल जाएं, तो स्ट्रेस कम हो जाएगा। लोगों से किसी चीज की उम्मीद करना बंद कर दें। अपनी समृद्धि, प्यार, सेहत और शांति के लिए खुद को प्रयास करना होगा।
- किसी ने हमारे साथ क्या बुरा व्यवहार किया, कैसे दुःख पहुंचाया–इन सबकी चिंता छोड़कर जीवन में हमें लक्ष्य हासिल करने हैं, उन पर चिंतन करें और नए उपाय सोचें।
- हमारे आसपास जो कुदरती सौंदर्य, दयालुता, प्रेम आदि बिखरे पड़े हैं, उन पर ध्यान दें। क्षमा को ताकत समझें। यही खमत-खामणा, क्षमा और क्षमा-याचना है। ❐

अन्तर्मुखी : सदा सुखी

आचार्य महाप्रज्ञ

हम अपनी आंतरिक संपदा को समझें। क्योंकि बाहर की संपदा हमें अहंकारी बनाती है, जबकि भीतर की संपदा विनय और सहिष्णुता की क्षमता प्रदान करती है। बाहर से धनी और भीतर से गरीब तथा भीतर से धनी और बाहर से गरीब लोगों से कभी-कभी आपका भी साक्षात्कार हो सकता है। ऐसे व्यक्ति भी मिलते हैं। भले ही ऐसे लोग अब अल्पसंख्यक की श्रेणी में आ गए हों, किंतु यह प्रजाति अभी विलुप्त नहीं हुई है। भीतर से समृद्ध आदमी ही वास्तव में समृद्ध होता है। अर्थ की दृष्टि से समृद्ध आदमी का कोई भरोसा नहीं। आज शेयर मार्केट क्षण भर में अरबपतियों को भिखारी की हालत में सड़क पर लाकर खड़ा कर देता है। इन्हें समृद्ध कैसे कहा जाए?

इस संसार में शांत और सुखी वही रह सकता है, जिसने भीतर की संपत्ति अर्जित कर ली। अन्यथा इस अशाश्वत दुनिया में आकर कोई सुखी नहीं रह सकता। अधिकार और पद भी क्षणिक हैं। कब आएं और कब चले जाएं, कोई भरोसा नहीं। पारिवारिकजन, कुटुंबी, पत्नी, पुत्र आदि पर भी ज्यादा भरोसा करना उचित नहीं है। इस बात की सत्यता की परख करने की जरूरत नहीं। आपको अपने नित्यप्रति के जीवन में ऐसे रोते और दुःखी होते लोग मिल जाएंगे, जिनका लंबा परिवार है और पास में वह सब कुछ है, जिसे आज की दुनिया में धनी होने का पैमाना माना जाता है।

जिसके भीतर की संपदा नहीं होती, उसके सुख-दुःख की चाबी हमेशा दूसरों के पास रहती है। अक्लमंदी इसी में है कि चाबी अपने हाथ में रखी जाए। अपनी लगाम अपने हाथ में रहे।

बहुत विशाल है भीतर की दुनिया। इस भीतर की दुनिया में जो विहरण करते हैं, उनके सामने बाहर की दुनिया का हर आकर्षण बिलकुल फीका है। एक बार भीतर की दुनिया में जो प्रवेश कर लेते हैं, वे बाहर की दुनिया में रहना कभी पसंद नहीं करेंगे।

बाहर से कुछ जरूरी चीज प्राप्त करने के लिए बाहर की यात्रा होती है। दूर प्रांतों की यात्रा कर लोग पैसा कमाकर लाते हैं। खरीदारी करने के लिए लोग शहर जाते हैं। मेला और प्रदर्शनी देखने के लिए भी लोग यात्रा करते हैं। आजकल रैलियां बहुत होती है। राजनीतिक दल भीड़ जुटाने के लिए बसों और रेलों में निःशुल्क यात्रा की व्यवस्था करते

हैं। तीर्थाटन के लिए भी यात्रा की जाती है। पर्यटन की दृष्टि से भी लोग सैलानी बनकर यात्रा करते हैं। लेकिन भीतर की यात्रा का उद्देश्य बहुत गहरा होता है। भीतर की यात्रा होती है अपने आपको देखने और समझने के लिए। अपने आपको जानने और समझने के लिए भीतर की यात्रा के सिवाय और कोई विकल्प भी नहीं है।

बाहर की यात्रा में आपको द्रव्य के रूप में कुछ व्यय करना पड़ता है। भौतिक रूप से उसके बदले कुछ प्राप्त भी होता है, किंतु वह चीज प्राप्त नहीं होती जो वास्तव में हर किसी को प्राप्त करनी चाहिए। इसलिए आत्म-कल्याण की दृष्टि से बाहर की यात्रा का कोई मूल्य नहीं है।

आप अगर यह मानकर आते हैं कि दर्शन मात्र से और प्रवचन सुन लेने से बड़ा लाभ मिल जाएगा तो आपकी सोच सही नहीं है। दिन और रात के बीच कुछ समय अपने भीतर देखने और रहने का अभ्यास करें। इससे आपको प्रत्यक्ष लाभ और आनंद की अनुभूति होगी। आपके स्वभाव और मनोवृत्ति में भी सकारात्मक परिवर्तन आएगा।

मैं कौन हूं? यह प्रश्न आपके भीतर से उठे और इसका उत्तर भी आप अपने भीतर ही तलाशने का प्रयास करें। साधना और अभ्यास से 'मैं कौन हूं' का उत्तर जरूर मिलेगा। यह उत्तर मिल गया तो फिर और ज्यादा कुछ जानने की जरूरत नहीं रह जाएगी।

मन की चंचलता को कम करके एकाग्रता को कैसे बढ़ाया जा सकता है, अपने संवेगों पर नियंत्रण कैसे किया जा सकता है? इन सारी बातों पर ध्यान दें और तदनुकूल अभ्यास करें तो माना जाएगा कि आपकी अंतर्यात्रा चल रही है, अन्यथा आपकी सारी यात्रा पर्यटन की ही कोटि में आएगी। चार दिन सेवा-उपासना की, उदयपुर के दर्शनीय स्थलों को देखा और जैसे आए थे, वैसे ही लौट गए। लाभ क्या हुआ? लाभ तो मिलेगा अंतर्यात्रा से। कोशिश करके देखो, कितनी ही पिछोला और फतहसागर झीलें आपको अपने भीतर ही मिल जाएंगी। महाराणा के किले से करोड़ गुना अधिक बड़ा संग्रहालय आपको अपने भीतर मिलेगा, अगर सही ढंग से अपने को देखने का अभ्यास हो जाए तो।

केवल सौंदर्य समस्या बनता है। सत्य और शिव के बाद क्रम आता है—सौंदर्य का। पहले सत्य और शिव को जोड़ो। आजकल फार्म हाउस, रेस्त्रां और होटल को ऐसा रूप दिया जा रहा है कि सहज ही मन को आकर्षित करते हैं। कश्मीर की झीलें और उत्तराखंड के पहाड़ और झरने यहां से कहीं ज्यादा सुंदर हैं। सुंदरता में ही उलझकर रह जाएंगे तो हाथ कुछ नहीं लगेगा।

आज की जो सबसे बड़ी समस्या है, वह है–मोह और ममत्व की। दुःख कहां से आ रहा है? बिना किसी संकोच के उत्तर दिया जा सकता है–ममत्व से आ रहा है। मेरापन जुड़ते ही दुःख अनिवार्य रूप से हमारे साथ जुड़ जाता है। सुख की सृष्टि करनी है तो ममत्व का परित्याग करना ही होगा। ममता संसार है और समता अंतर्यात्रा है। व्यवहार के जगत में ममता जरूरी हो जाती है, किंतु ममता इतनी ज्यादा न हो कि वह तुम्हारी समता में बाधक बन जाए।

सारा दुःख मेरेपन की अनुभूति में है। यह मेरेपन की अनुभूति समाप्त हुई तो दुःख की अनुभूति भी समाप्त हो जाएगी। इसलिए ममत्व का विसर्जन करना सीखें।

ममत्व को छोड़ने का उपाय है–एकत्व की भावना। अध्यात्म की दृष्टि से समस्याओं को सुलझाने के लिए भगवान महावीर ने एक सुंदर मार्ग दिखाया और वह है–अनुप्रेक्षा का मार्ग। मैं अकेला हूं, इस बात का चिंतन करें। परिवार में रहकर भी, परिवार से जुड़े रहकर भी हर समय अकेलेपन की अनुभूति करें।

अंतर्यात्रा ममत्व की गांठ को कमजोर करने की यात्रा है। उसे नियंत्रित करने की यात्रा है। नेपोलियन बोनापार्ट ने वाटरलू के मैदान में हार जाने के बाद कहा था–'कुछ देर के लिए मुझे अकेला छोड़ दो।' अकेले में हमारे पास सिर्फ हमारी आत्मा होती है, जो भीतर झांकने, देखने और समझने का अवसर देती है। थोड़ी ही देर में आदमी अपने भीतर से हजारों किलोमीटर

की यात्रा कर लेता है। उस समय उसका चिंतन स्थिर हो जाता है। सही और गलत का निर्णय और निष्कर्ष कर लेने में वह काफी हद तक सक्षम हो जाता है। यह ठीक बात है कि सही परामर्श देने में हमारी आत्मा से ज्यादा बड़ा हितैषी और सक्षम कोई दूसरा नहीं। अकेले में शांति के साथ हम जो निर्णय लेते हैं, वह सही और प्रायः सटीक होता है। उस समय हमारा सोया हुआ विवेक जाग्रत हो जाता है।

दुर्घटनाएं, प्राकृतिक प्रकोप आदि अकसर हमें इस बात की अनुभूति करा देते हैं कि प्रकृति के आगे हम पूरी तरह से लाचार हैं। हमें इस बात का भान हो जाता है कि इस दुनिया में मेरा कुछ भी नहीं है। बाढ़ एक ही बार में कितने ही गांव और बस्तियों को लील जाती है। जिस घर और मकान को आदमी अपना मानकर उसे सजाए-संवारे रखता है, वह सपाट मैदान में बदल जाता है। उस समय इस सचाई का पता चलता है कि मेरा यहां कुछ भी नहीं है, कोई भी नहीं है। कोई घटना या दुर्घटना हमें इस सचाई का बोध कराए, इससे अच्छा है, हम पहले ही इस सचाई से अवगत रहें। इसका सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि हम अतिशय दुःख की पीड़ा से बच जाएंगे। नुकसान उठाकर भी हमें दुःख की अनुभूति नहीं होगी, क्योंकि जीवन की अनित्यता और अकेलेपन की सचाई से हम अवगत रहेंगे। धन, परिजन हैं तो ठीक, नहीं हैं तो भी ठीक। इनमें संलिप्तता दुःख देती है। यह निर्लिप्तता हमें हर स्थिति में सम रहने में सहायता करेगी।

मैंने पर्युषण को प्रतिसंलीनता के रूप में देखा। प्रतिसंलीनता का अर्थ है–बाहर ही बाहर मत रहो। अधिकांश समय भीतर रहो। बाहर तभी जाओ, जब बहुत जरूरी हो। बाहर ही बाहर रहोगे तो अपराधी बन जाओगे, दुःखी बन जाओगे, तनावग्रस्त हो जाओगे।

भीतर आना सीख लें। घर से बाहर निकलते हैं तो घूम फिर कर पुनः घर में आ जाते हैं। कोई भी चिरकाल तक बाहर नहीं रह सकता। घर आना जरूरी हो जाता है। जीवनपर्यंत कोई भी बाहर नहीं रह सकता।

घर से बाहर जाने का मतलब है–सुनने की दुनिया में चले जाना। आज की सबसे बड़ी समस्या यह है कि आदमी सुनने में ज्यादा रुचि ले रहा है। एक छोटा बच्चा भी आठ-दस घंटे टीवी के सामने गुजार देता है। सुनना मन को चंचल बनाता है। एक खास तरह की मनोवृत्ति का निर्माण करता है, एकाग्रता को भंग करता है। सुनने की भी एक सीमा होनी चाहिए। दिन भर सुनते ही रहे तो मनःस्थिति गड़बड़ा जाएगी, समस्या पैदा हो जाएगी। बाहर की यात्रा का मतलब है चलते-चलते वाहन से उतरना। परिणाम क्या होगा?

प्रतिसंलीनता में कान के बाद दूसरा स्थान है–आंख का। आंख के द्वारा हम रूप की दुनिया में, सौंदर्य की दुनिया में चले जाते हैं। सौंदर्य आदमी को लुभाता है, आकर्षित करता है। आज तो लुभाने और आकर्षित करने वाली अनेक चीजें हो गई हैं। बाहर चारों ओर आकर्षित करने वाली चीजों की भरमार है। घर में टी.वी. है, बाहर सिनेमा और थियेटर है, बाजार है, सजे हुए शोरूम हैं, बाग-बगीचे हैं, पार्क हैं, दीवारों पर अश्लीलता को प्रदर्शित करने वाले पोस्टर हैं। क्या नहीं है? सब कुछ तो है जो मन को आकर्षित करता है।

देखने की लालसा ने बड़ी समस्याएं पैदा की है। आदमी आंखों को तृप्ति देने के प्रयास में अपने करणीय कर्म से च्युत हो रहा है। समय को व्यर्थ गंवा रहा है। हम यह तो नहीं कह सकते कि किसी को देखो मत, गांधारी की तरह आंख पर पट्टी बांध लो। लेकिन इतना जरूर कहेंगे कि देखने में उलझो मत। देखो और फिर उसके बाद अपने भीतर की दुनिया में, अपने घर में लौट जाओ। अगर बाहर ही बाहर देखते रहे तो एक दिन पागल हो जाओगे।

कान पर, आंख पर नियंत्रण रहा तो जीवन का पुरुषार्थ सधेगा। जीवन सुचारु रूप से चलेगा। लेकिन अगर संतुलन कायम न हुआ तो घर के रहोगे, न घाट के। कान और आंख फिर बेहतर जीवन जीने के साधन नहीं, बहुत बड़ी बाधा बन जाएंगे। आज कान और आंख बहुत बड़ी समस्या खड़ी कर रहे हैं। अफवाह सुनी और प्रवाह में बह गए। किसी से अपने बारे में सुना और एक धारणा बना ली। किसी ने किसी के बारे में बयान

दिया, अखबार में छपा और दूसरे दिन प्रतिकार स्वरूप अखबार में दूसरा गरमागरम बयान छप जाएगा। बात आमने-सामने नहीं, अखबार और मीडिया के जरीए होगी। कान से सुन लिया कि अमुक व्यक्ति ने मेरे बारे में ऐसी बात कही और आदमी हाथ में हथियार उठाकर उसकी हत्या के लिए सन्नद्ध हो जाता है।

यही बात आंख पर भी लागू होती है। प्राचीनकाल में ऐसा होता था कि एक देश के राजकुमार ने दूसरे देश की राजकुमारी के रूप की प्रशंसा सुनी। मनं बेकाबू हुआ और वेश बदलकर उस राजकुमारी से मिलने का उपक्रम शुरू कर दिया या सेना लेकर उस देश पर चढ़ाई कर दी और राजकुमारी से विवाह कर लिया। ऐसा भी हुआ कि राजमहल के किसी कर्मचारी ने राजा की बेटी या रानी पर कुदृष्टि डाली और दंडस्वरूप राजा ने उसकी आंख निकलवा दी। ऐसे कथानकों पर तमाम कथाएं और आख्यान लिखे गए। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में दृष्टिभ्रम में पड़े दुर्योधन का मजाक उड़ाते हुए द्रौपदी ने कह किया–'अंधों के अंधे ही पैदा होते हैं। बस, यहीं से दुर्योधन के मन में एक फांस चुभ गई जो जीवन भर नहीं निकली और परिणाम निकला महाभारत युद्ध।

पर्युषण पर्व यह संदेश देता है कि रूप के आकर्षण में मत बंधो। आकर्षण हो तो गुणों के प्रति, संयम और त्याग के प्रति, व्रतों के प्रति हो। बाहर निकलते ही दृष्टि का संयम कर लो। अधिकांश समय अपने भीतर रहो, बाहर की दुनिया में निरर्थक, निरुद्देश्य मत भटको। बाहर समस्या है, भीतर समाधान है। इन सारी बातों के संदर्भ में आप पर्युषण पर्व का मूल्यांकन करें।

जीवन में श्रवणेंद्रिय और चक्षुरिंद्रिय की बहुत बड़ी भूमिका है। ये दो इंद्रियां न हों तो जीवन भारभूत बन जाता है। मूल बात है इनके सदुपयोग और दुरुपयोग की। कानों से अगर आप उपदेश सुनते हैं तो उनकी सार्थकता है। अगर किसी की निंदा, अपशब्द और इंद्रियों को चंचल बनाने वाले शब्द सुनते हैं तो यह कानों का दुरुपयोग है। यही बात देखने के संदर्भ में की जा सकती है। देखना है तो वह देखो, जो जीवन के लिए उपयोगी है, जो अंतर्मन में पवित्रता भरे, जीवन को शुद्ध और सात्त्विक बनाए, चेतना को रूपांतरित करे। जब रूप के साथ आसक्ति की चेतना जुड़ जाती है तो जीवन में समस्या पैदा होती है।

बाहर की दुनिया में आंखों की उच्छृंखलता का परिणाम है–पुलिस, जेल अथवा सामाजिक प्रताड़ना। बाहर की दुनिया में इसके अलावा और कोई समाधान नहीं है। यह भी एक सचाई है कि दीर्घकाल तक बाहर की दुनिया में रहने पर भीतर का रास्ता धीरे-धीरे बंद होता जाता है। अपराध की दुनिया में जीता हुआ आदमी इतना शातिर हो जाता है कि फिर उसके सुधरने का कोई उपाय नहीं रह जाता। भीतर की दुनिया में अपने घर लौटने की उसकी इच्छाशक्ति भी समाप्त हो जाती है। इसलिए जो बाहर की दुनिया में जीते हैं, उन्हें सचेत और सावधान हो जाने की जरूरत है। बीमारी लाइलाज या असाध्य हो जाए, उसके पहले उसका उपचार हो जाना चाहिए।

मूर्च्छा को तोड़ने का, समस्या से मुक्त होने का, अपराधी मनोवृत्ति के बदलाव का सबसे अच्छा उपाय है–प्रतिसंलीनता। उसके लिए पर्युषण का समय सबसे उपयुक्त और अच्छा समय है। सबके साथ रहते हुए भी नितांत अकेलेपन की अनुभूति का समय है। अपने भीतर यानी आत्मस्थ रहने का समय है।

आत्मा से बाहर जाने के पांच रास्ते हैं–आंख, कान, जीभ, नाक, और त्वचा। ये बाहर की दुनिया में पहुंचाने वाले द्वार हैं। हमें इन पांच दरवाजों को मजबूती से बंद करना है। चौबीस घंटे ये पांच दरवाजे खुले नहीं रहने चाहिए। बाहर की दुनिया में जाना जरूरी हो जाता है। उसके बिना काम नहीं चलता। किंतु यह बहुत अल्प समय का होना चाहिए। बाहर जाओ और तुरंत वापस आ जाओ।

रूप, रस, गंध, स्पर्श की दुनिया में रहते हुए भी इनमें संलिप्तता की स्थिति न बने। राग-द्वेष को यथासंभव क्षीण करते जाएं। यही है भीतर जाने और वहां अधिक समय तक रहने का उपाय। आठ दिन तक पर्युषण की यह सम्यक आराधना चले तो यह जीवन को शांत, सुखी और अच्छा बनाए रखेगी। ❐

अपराधी के प्रति करुणा

श्री भद्रगुप्तविजयजी गणीवर

धर्मग्रंथों में श्रेष्ठि सुव्रत का उदाहरण आता है। करोड़पति था वह। ग्यारह करोड़ स्वर्ण मुहरों का मालिक था। ग्यारह पत्नियों का पति था और एकादशी-तिथि का आराधक था। सुव्रत के साथ '11' का अंक जुड़ गया था। एक बार एकादशी के दिन जब सुव्रत 'पौषधव्रत' धारण कर अपनी हवेली के एक एकांत कमरे में धर्मध्यान में लीन था, रात्रि के समय चोरों ने उसकी हवेली में प्रवेश किया। सुव्रत की सारी संपत्ति हवेली में ही थी। उस जमाने में बैंक कहां थे 'सेफडिपॉजिट बाल्ट' कहां थे! श्रीमंत लोग अपनी हवेली में ही संपत्ति रखते थे। कोई जमीन में गाड़ देता तो कोई तिजोरी में भर देता। कोई भित्ति में छिपाता तो कोई मकान की छत में छिपाता।

हवेली में सब सो गए थे, सुव्रत श्रेष्ठि ध्यान लगाकर खड़े थे। चोरों ने धन-माल इकट्ठा किया, गठरियां भी बांधी। सुव्रत ने जब ध्यान पूरा किया, उसको मालूम पड़ गया। परंतु चोरों को रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया। वह 'पौषधव्रत' में थे, संसार की कोई भी प्रवृत्ति नहीं करने की प्रतिज्ञा थी। वैसे उनका हृदय इतना अनासक्त था कि 'मेरी संपत्ति... करोड़ों का धन चोर ले जाएंगे... तो मेरा क्या होगा?' ऐसा विचार भी नहीं आया। उसने तो सोचा कि जो वास्तव में मेरा है, उसको कोई ले जा नहीं सकता और जो मेरा नहीं है, उसको कोई ले जाता है तो मुझे क्या? मेरा है–सम्यगज्ञान, सम्यगदर्शन और सम्यगचारित्र। मेरे हैं अक्षय गुण। उसकी चोरी कोई नहीं कर सकता। यह भौतिक संपत्ति मेरी है ही नहीं... मैं क्यों चिंता करूं उसकी?

क्या था सुव्रत सेठ में

ग्यारह करोड़ स्वर्णमुहरों का मालिक क्या चिंतन करता है? कुछ समझ में आता है। धन-दौलत के प्रति उसकी कैसी दृष्टि है? न ममत्व, न परिग्रह की वासना। धन के पर्वत पर बैठे हैं फिर भी उस पर्वत पर कोई राग नहीं। यदि संपत्ति पर राग होता, ममत्व होता तो वह क्या करता? पौषधव्रत को भंग कर देता? चिल्लाता... रक्षकों को बुलाता... धमाल कर देता वहां? चोरों को कैसी सजा करवाता? सुव्रत को चोरों के प्रति कोई रोष नहीं आया, द्वेष नहीं आया। जड़ के प्रति वैराग्य था, फिर द्वेष कहां से आता? जड़-राग और जीव-द्वेष ही तो सर्व अनर्थों का मूल है। अनित्यादि भावनाओं के सतत अभ्यास से जड़ राग मिटाया था और मैत्री, करुणा आदि भावनाओं से जीव-द्वेष दूर किया था उस महान श्रावक ने।

धनवान होने पर भी धनप्रेमी नहीं था। श्रीमंत होने पर भी लक्ष्मीदास नहीं था। सुव्रत श्रेष्ठि तो परमात्मा के ध्यान में लीन हो गए। चोरों को तो मजा आ गया होगा। धन-माल की गठरियां सिर पर उठाकर वे जाने लगे...परंतु जाएं कैसे? हवेली के द्वार पर ही चारों चोर चिपक गए। पैर जमीन के साथ ऐसे चिपक गए कि उखड़े ही नहीं। बहुत प्रयत्न करने पर भी बेचारे चिपके ही रहे। अब वे घबराए।

दुःखी को सजा करने के बजाय दुःखी का दुःख दूर करने की सोचो। चोरी करने वाला पापी है, दुष्ट है, अधम है, ऐसा सोचने से पहले 'चोरी करने वाला दुःखी है' यह विचार करो।' 'दुष्ट है' ऐसा सोचने पर द्वेष उभरेगा। 'दुःखी है' ऐसा विचार सोचने पर करुणा उभरेगी। सुव्रत चोरों को 'दुःखी' देखते हैं। इस भव के दुःखी और परभव के भी दुःखी। इसलिए उनके हृदय में करुणा उभरी।

सुव्रत की भावकरुणा का प्रभाव चोरों पर कितना गहरा पड़ा? चोर सुव्रत के चरणों में गिर पड़े। आंखों में से आंसू बहाते...गद्‌गद स्वर से बोलने लगे–हे महात्मन्! हम कभी भी चोरी नहीं करेंगे। आपने हमको अभयदान दिया है...आपका उपकार कभी नहीं भूलेंगे। आपने हमारे भयंकर अपराध को क्षमा कर दिया... आप देवता पुरुष हो...।

ज्ञानी पुरुषों ने कहा है : **धर्मो रक्षति रक्षितः** आप अपने हृदय में धर्म को सुरक्षित रखो, धर्म आपकी सुरक्षा करेगा ही। जीव-राग और जड़ वैराग्य जैसा महान धर्म था सुव्रत के हृदय में। शुद्ध हृदय ही श्रेष्ठ धर्म था उसके पास। उसकी संपत्ति चोर कैसे ले जा सकते थे? देवी तत्त्व जाग्रत हो गए... चोरों को चिपका दिया जमीन से।

सुव्रत ने कोई देव-देवी से प्रार्थना नहीं की थी कि हे क्षेत्र देवता! मेरी संपत्ति बचा लेना।' अथवा परमात्मा से भी प्रार्थना नहीं थी कि 'हे भगवान, मेरी धन-दौलत बचा लेना...।' गृहस्थ जीवन में भी अनासक्त योगी था–सुव्रत श्रेष्ठि। उसके हृदय में धन-संपत्ति का राग ही नहीं था, फिर धन-संपत्ति को बचाने की प्रार्थना क्यों करे? अनासक्त हृदय ही महान धर्म है। अनासक्ति ही परमानंद है और परम सुख है। जीवमात्र के प्रति मैत्री और करुणा जिस हृदय में भरी हो, वह हृदय कितना विशुद्ध, कितना निर्मल, कितना पवित्र और कितना प्रशांत होता है।

प्रातःकाल श्रेष्ठि ने अपना 'पौषधव्रत' पूर्ण किया और अपने कमरे से बाहर आए, उन्होंने चोरों को बुरे हाल में देखा। चोर बहुत घबराए हुए थे। श्रेष्ठी ने पूछा चोरों को–तुम यहां क्यों खड़े हो? चले क्यों नहीं गए अभी तक? कोतवाल आएगा तो पकड़ लेगा... तुम चले जाओ, जल्दी करो।'

चोरों ने कहा–सेठ साहब हम कैसे चले जाएं? हमारे पांव तो जमीन से चिपक गए हैं... आपने कुछ किया है...कृपा करो। हमको मुक्त करो...हम आपका सारा माल छोड़कर चले जाएंगे... कभी चोरी नहीं करेंगे... हमको जाने दो...।' सुव्रत ने चोरों को स्पर्श किया कि चोर चलने लग गए। परंतु जाए कहां? उधर कोतवाल हाजिर ही था। कोतवाल चारों चोरों को पकड़कर ले गया राजा के सामने।

सुव्रत का सारा का सारा धन-माल बच गया। फिर भी सुव्रत बेचैन था। माल बच जाए तो राजी होना चाहिए था, पर वह नाराज था। धन-माल बचने का आनंद नहीं हो रहा है, चोर पकड़े गए... और उनको सजा होगी... इस बात का दुःख हो रहा है सुव्रत को। 'राजा चोरों को सूली पर चढ़ा देगा... बेचारे चार आदमी मेरे धन के निमित्त मर जाएंगे...!' ऐसा सोच रहे हैं सुव्रत श्रेष्ठि।

आप क्या सोचेंगे ऐसे वक्त में?

ऐसी घटना आपके साथ घटे तो आप क्या करेंगे? तुलनात्मक दृष्टि से सोचें जरा। धन-संपत्ति की लोलुपता क्या करवाए? चोर पकड़े जाएं तो राजी या नाराज? अरे, नहीं पकड़े जाएं तो पकड़वाने के लिए आकाश-पाताल एक कर देते।

सभा में से : चोरों को तो सजा होनी ही चाहिए न?

महाराजश्री : यह सोचने से पहले यह सोचो कि इनसान को चोरी क्यों करनी पड़ती है। चोरी के पाप से मनुष्य को बचाया जा सकता है या नहीं? सजा करने से,

मारने से यदि वह चोरी का पाप छोड़ देता हो तो ठीक है, अन्यथा सजा करो! चोरी का पाप करने वाला पहले तो करुणापात्र है, बाद में सजापात्र! सजा करने में भी हृदय तो करुणा वाला ही चाहिए। 'कैसा पाप करता है यह जीव... कितना दुःखी हो रहा है...?' उसके प्रति सहानुभूति चाहिए। सुव्रत श्रेष्ठि तो यह चाहते हैं कि 'चोरों को सजा नहीं होनी चाहिए, मैं उनको बचा लूं... उनको मैं समझाऊंगा, वे चोरी नहीं करेंगे भविष्य में।'

उपवास का पारणा नहीं किया और पहुंचे राजमहल में राजा के पास। राजा को सुव्रत श्रेष्ठि के प्रति आदर था। राजा ने श्रेष्ठि का स्वागत किया और प्रातःकाल में आने का प्रयोजन पूछा। सेठ ने चोरों के लिए अभयदान मांगा। इतने में कोतवाल भी चार चोरों को लेकर राजा के पास उपस्थित हुआ। सुव्रत जैसे धर्मात्मा की हवेली में चोरी करने वाले चोरों के प्रति राजा को बड़ा गुस्सा आया। परंतु सुव्रत ने राजा को शांत करते हुए कहा–महाराज! दोष इन चोरी करने वालों का नहीं, मेरा है। मैंने...मेरे जैसे श्रीमंत ने दुःखी मनुष्यों की चिंता नहीं की, उनके दुःख दूर करने का काम नहीं किया, इसलिए इनको चोरी का पाप करना पड़ रहा है... आप इनको मुक्त कर दें, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि ये लोग चोरी नहीं करेंगे। इनको जो चाहिए, मैं दूंगा।'

दुःखी को नहीं, दुःख को भी जानो

दुःखी को सजा करने के बजाय दुःखी का दुःख दूर करने की सोचो। चोरी करने वाला पापी है, दुष्ट है, अधम है, ऐसा सोचने से पहले 'चोरी करने वाला दुःखी है' यह विचार करो।' 'दुष्ट है' ऐसा सोचने पर द्वेष उभरेगा। 'दुःखी है' ऐसा विचार सोचने पर करुणा उभरेगी। सुव्रत चोरों को 'दुःखी' देखते हैं। इस भव के दुःखी और परभव के भी दुःखी। इसलिए उनके हृदय में करुणा उभरी।

सुव्रत की भावकरुणा का प्रभाव चोरों पर कितना गहरा पड़ा? चोर सुव्रत के चरणों में गिर पड़े। आंखों में से आंसू बहाते...गद्‌गद स्वर से बोलने लगे–हे महात्मन्! हम कभी भी चोरी नहीं करेंगे। आपने हमको अभयदान दिया है...आपका उपकार कभी नहीं भूलेंगे। आपने हमारे भयंकर अपराध को क्षमा कर दिया... आप देवता पुरुष हो...।'

राजा भी सुव्रत की अत्यंत करुणा से काफी प्रभावित हुआ। सुव्रत का धर्म तेज हजारों सूर्य से भी ज्यादा चमकने लगा। जिस-जिस ने यह घटना सुनी होगी नगर में, उन सबके मन सुव्रत के प्रति कितने स्नेहयुक्त और श्रद्धायुक्त बने होंगे? करुणावंत पुरुष दूसरों के हृदय में धर्म की सच्ची स्थापना कर देते हैं। धर्म की श्रेष्ठ प्रभावना करुणावंत लोग ही करते हैं। जिसके पास धर्म हो, वही दूसरों को धर्म दे सकता है न? करुणायुक्त हृदय ही तो धर्म है। जिस हृदय में मैत्री, प्रमोद और करुणा नहीं, वहां धर्म है ही नहीं, फिर धर्मप्रभावना करेगा कैसे? दूसरों को धर्म देगा कैसे?

सुव्रत का एकादशी-आराधन का अनुष्ठान वास्तव में 'धर्म' था, चूंकि वह अनुष्ठान जिनवचनानुसार था, यथोचित था और मैत्री-करुणा आदि शुद्ध भावनाओं वाला था। ऐसा अनुष्ठान ही 'धर्म' कहलाता है। धर्म की भाषा बराबर समझ लें। विस्तार से इसलिए समझा रहा हूं कि आजकल 'धर्म' की मनमानी बहुत परिभाषाएं होने लगी हैं। अपना स्वार्थ साधने के लिए अनेक धूर्त धर्म की बातें कर रहे हैं। हालांकि ऐसी धूर्तता आजकल की नहीं है, हजारों वर्ष से चली आ रही है। इसलिए काफी सतर्क रहना पड़ता है। किसी से भी धर्म की बात सुनो, उस पर सोचना कि 'यह धर्मानुष्ठान जिनवचन से विपरीत तो नहीं है न? मैत्री-प्रमोद आदि भावनाओं से युक्त है न? ❐

धर्म की समग्र यात्रा : पर्युषण आराधना

साध्वी राजीमती

पूरणात् पर्व धर्मोच्च हेतुत्वात्,
धर्म-पूरणं पर्व इति भावना।

उन्नत धार्मिक भावनाओं से स्वयं को भरने वाला साधन है पर्युषण पर्व। जिस गुण से हमें पूर्ण होना है, उसकी भावना, साधना, आराधना, अनुप्रेक्षा करना इस पर्व की मूल प्रेरणा है।

पर्युषण पर्व नहीं, किंतु महापर्व है। यह भाद्रपद मास में सामान्य त्योहारों की तरह आता है, इसलिए पर्व है, किंतु यह पर्व पूर्ण आत्मशुद्धि का प्रेरक, उत्प्रेरक है, इसलिए यह महापर्व है। यह जैनों का एकमात्र विशिष्टतम पर्व है। कुछ पर्व अपनी लोकप्रियता के कारण सभी जातियों, धर्मों के द्वारा मनाए जाते हैं, परंतु यह वैसा भौतिक पर्व नहीं है। शरीर केंद्रित पर्व शरीर-सुख की सामग्री जुटाते हैं। आध्यात्मिक पर्व आत्मकेंद्रित होते हैं। इसलिए वे आत्मसुख की सामग्री जुटाते हैं। कुछ पर्व तात्कालिक होते हैं। वे किसी पात्र या घटना के साथ जुड़े होते हैं। शाश्वत धार्मिक पर्व प्रतिवर्ष मानव मन को नया दिशा-बोध देकर चले जाते हैं। फिर संभाल के लिए लौट आते हैं।

पर्युषण का शाब्दिक अर्थ है–परि, चारों ओर से सिमटकर, वसन–एक स्थान पर निवास करना या स्वयं में वास करना। इस शब्द के मुख्य तीन रूप मिलते हैं–पज्जोसणा, पज्जुषणा, पज्जवसणा। तीनों का कुल मिलाकर एक ही फलितार्थ है–

- कषायादि-विकारों का उपशमन करना।
- विषय जगत में घूमने वाली इंद्रियों को भीतर की ओर मोड़ना।
- वैभाविक प्रवृत्तियों से चित्त को हटाना।
- अतीत में हुई भूलों का सिंहावलोकन करना।
- भविष्य के लिए संकल्पों को सजाना।
- विशिष्ट साधना के लिए समय का नियोजन करना।
- नए वर्ष में नई योजनाएं बनाना।

संवत्सरी का इतिहास

कब करें पर्युषण? इस प्रश्न पर विभिन्न ग्रंथों में अनेक तथ्य प्रस्तुत हुए हैं। लगभग सभी एक दूसरे के संवादी मिलते हैं। इस विषय का विस्तृत वर्णन 'पर्युषण कल्प' प्रकरण में मिलता है। जैन श्रमणों के आचार विषयक निर्देश में बताया है—चतुर्मास आषाढ से प्रारंभ होता है। इन पचास दिनों की अवधि में कभी पर्युषण किया जा सकता है और यदि स्थान की अनुकूलता नहीं हो तो सावन बदी एकम से उपयुक्त वसति की खोज करें। अनुकूलता में पर्व-तिथियों के दिन पर्युषण करें, किंतु अपर्व तिथियों में नहीं करें।

शास्त्राकार कहते हैं–अपर्युषण में पर्युषण करे और पर्युषणा में नहीं करे तो वह मुनि प्रायश्चित्त का भागी बनता है। पंचमी, दशमी, पूर्णिमा एवं अमावस्या–पर्व तिथियां कहलाती हैं। पांच-पांच दिन के हिसाब से खोज करते हुए यदि भाद्रपद शुक्ल पक्ष प्रारंभ हो गया हो तो पंचमी का लंघन नहीं करे। जहां भी स्थान मिले वहां पर्युषण कर ले। भले वृक्ष-भूमितल ही सुलभ हो।

स्थान संबंधी प्रतिकूलताएं

प्रश्न होता है कि पंचमी का लंघन नहीं करें, इसके पीछे क्या तात्पर्य है? उत्तर साफ और स्पष्ट है। पंचमी के पूर्व पर्युषण मनाने में निम्न बाधाएं हो तो न मनाएं। जैसे–

1. वर्षा के कारण रास्ते बंद हो गए हों।
2. वर्षा समय के जाने पर घरों को लीपा पोता गया हो। लेप नहीं सुखा हो।
3. नई बाड़ें लगाई गई हों।
4. आंगन को समतल, ठीक किया हो।
5. घरों को धूपादि से सुगंधित किया हो।
6. पानी निकालने की नई नालियां बनाई हों।
7. मकानों को जीव-जंतु रहित किसी प्रयोग से बनवाया हो।

कैसे करें संवत्सरी आराधना

पंचमी के दिन अर्थात् संवत्सरी के दिन जैन श्रमण तीन कार्यों को नहीं करे, क्योंकि तीनों कार्य उस दिन की आराधना के विपरीत हैं। अतः उनका प्रायश्चित्त करने का निशीथ सूत्र में उल्लेख है–

1. पज्जोसवणयाए इत्तरियं पि आहारं णो आहारेइ। इस दिन किंचित् भी आहार नहीं करें।।
2. पज्जोसवणयाए गोलोमाइंपि वालाइं उवाइणावेइ। सिर पर गाय के रोम जितने भी बाल नहीं रखें।
3. जे णिग्गंथो वा णिग्गंथीवा परं पज्जोसवणओ। अहिगरणं वयइ सेणं णिज्जुहियव्वेसिया।।

यदि कोई साधु परस्पर पर्युषण के दिन कठोर वचन बोले, खमत खामणा नहीं करे तो उसे संघ से अलग कर दें। संवत्सरी शब्द संवत्सर शब्द से बना है। पर्युषण के लिए संवत्सरी का प्रयोग बाद में हुआ है। मूल शब्द पर्युषण है। महावीर ने पर्युषण किया। गणधरों ने पर्युषण किया। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों में पर्युषण कल्प की परंपरा मान्य रही है।

नया कुछ भी नहीं है जगत में। पर्युषण सृजन का नया देवता है। यह जब आता है तब व्यक्ति बदलता है। उसका घर बदलता है। उन दिनों में सब नया-नया-सा लगता है। जो रोज घर आंगन को बुहारता है, उसके लिए विवाह पूर्व की तैयारी जैसा है। लंबे समय से जमा कचरा उठाना, घर को धोना, सजाना कठिन है तथापि करना जरूरी है, क्योंकि पर्युषण चेतना के अनावरण का पर्व है। उन आठ दिनों में धर्म को जीने की, धर्म में रमने की जरूरत है। धर्म बारहमासी फल है। मौसमी फल नहीं है। उस फल का रंग है–प्रकाश और स्वाद है–आनंद, तृप्ति। पर्युषण इसीलिए तो त्योहार माना गया है कि वह आपके भीतर ऊष्मा, जोश पैदा करता है, धर्म के मैदान में दौड़ने की बात करता है।

एक अच्छा किसान जैसे वर्षा के पूर्व अपने खेत को बोने लायक बना लेता है वैसे ही एक धार्मिक अपने आत्मा के खेत को पर्युषण बीज बोने लायक बना लेता है। अच्छा, उर्वर तैयार कर लेता है। यदि नहीं तो पूछिए स्वयं से कि आज जैन कहलाने के अधिकारी कैसे हुए? यह त्योहार तो हजार वर्ष, लाख वर्ष से पहले भी आया था और इसके बाद भी आता रहेगा। बात है केवल जागने की। यदि जागरण होता तो दुनिया के नक्शे में 'जैनों' का रूप कुछ और ही होता।

सूरज घर-आंगन में आए और व्यक्ति नहीं जागे तो दुर्भाग्य अपना है। सूरज से क्या शिकायत करें? वह तो अपनी गति से अपने समय पर आता है। और चला जाता है। जागना तो आपको है। उसके जाने के बाद भी घर में अंधेरा नहीं होने देना, यह जिम्मेदारी घर के मालिक की है या अधिकृत नौकर की है। अब भी अवकाश है सोचने व संभलने का। इसीलिए जैनत्व की सही पहचान बतलाई गई है।

पर्युषण और प्रतिक्रमण

जीवन में छोटी-बड़ी दोनों प्रकार की गलतियां होती रहती हैं। एक गलती का अर्थ हुआ–एक घाव, एक दाग। घाव त्वचा के ऊपर है या भीतर, इसकी जांच होनी अनिवार्य है। प्रतिक्रमण, चेतना पर जो व्रण हो गए हैं, उनकी दैनिक, पाक्षिक एवं वार्षिक चिकित्सा की व्यवस्था देता है। आदमी कभी क्रोध करता है, कभी वासना और कभी कामना के दबाव से अनेक प्रकार के विकारों को जन्म देता है, ये सब मिलकर हमारी

चेतना को, चित्त को अस्वस्थ, बीमार कर देते हैं। इस अस्वास्थ्य का इलाज है–प्रतिक्रमण।

प्रतिक्रमण भटकाव, विस्मृति एवं भूलों के कारणों की खोज और निवारण करता है। सामान्यतः प्रतिक्रमण हमारे अतीत में हुए पापों की विशुद्धि करता है। जो कदम गलत दिशा में, अशुभ कर्म-स्थानों में उठ गए हैं, उन्हें वापस मोड़ने की प्रेरणा प्रतिक्रमण देता है। प्रति का अर्थ है–वापस और क्रमण का अर्थ है–चलना। वापस चलना। लौट जाना। जैसे–

- असत्य से सत्याचरण की ओर आना।
- हिंसा से अहिंसा की ओर आना।
- अशुभ से शुभ की ओर आना।
- प्रमाद से अप्रमाद की ओर आना।
- अब्रह्मचर्य से ब्रह्मचर्य की ओर आना।
- वैर से मैत्री की ओर आना।
- अस्वास्थ्य से मानसिक स्वास्थ्य की ओर आना।

मनुष्य के पास सबसे बड़ी शक्ति है–संकल्प। आप क्या त्याग कर रहे हैं, इसका महत्त्व नहीं है, महत्त्व है आपकी निष्ठा का, आपकी संकल्प शक्ति कितनी प्रबल है–उसका, क्योंकि संकल्प ही आचार बनाता है। यही व्यक्तित्व बनाता है, किंतु पाया यह जाता है कि लोग जिस वस्तु का त्याग कर रहे हैं, उस पर बल ज्यादा देते हैं, जबकि बल देना चाहिए संकल्प पर, निष्ठा पर, निर्णय पर। व्रत भंग होते हैं, नियम टूटते हैं, इसका कारण है संकल्प का नहीं जागना, उसका सबल नहीं होना। प्रतिक्रमण करने का मौलिक उद्देश्य है–भूलों का संशोधन। भूल अतीत की होती है, इसलिए उसका प्रतिक्रमण प्रतिदिन करना चाहिए। विधि–पांच मिनट कायोत्सर्ग करें। दोनों हाथ तन्मयता के साथ जोड़ें। फिर मृदु, मधुर भाषा में बोलकर मिच्छामि दुक्कड़ं लें। (तीन बार बोलें)

प्रतिक्रमण से मनोग्रंथियों का विसर्जन

मनोविज्ञान के अनुसार मानव का मन अनेक संस्कारों एवं ग्रंथियों का जाल, संग्रहालय है। कई जन्मों के भाव और अनुभाव मिलकर इसकी रचना करते हैं। प्रतिक्रमण भावों में जो मलिनता है, उसका शोधन करता है और अतीत में अपने द्वारा जान या अनजान में हुई गलतियों का चिंतनपूर्वक निवारण करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

आज मनुष्य का मन बहुत अशांत है। इसका मौलिक कारण आत्मालोचन का अभाव है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को दोषी ठहरा रहा है। परिवार–कलह और अशांति के घर बन रहे हैं। हर कोई अपनी भूल स्वीकार करने के स्थान पर उसे स्थापित करने की, छुपाने की चेष्टा कर रहा है जबकि उसे भाव से स्वीकार करे, यह अपेक्षा है।

सबसे छोटा प्रतिक्रमण है–मिच्छामि दुक्कड़ं–मेरे पाप निष्फल हों। एक बार इन्द्र ने स्वर्ग के लेखापाल से कहा–तुम्हें बड़ी जागरूकता से मर्त्यलोक के अमुक बधिक के पापों का हिसाब रखना है। 'तथास्तु' कहकर कार्य प्रारंभ कर दिया।

एक साल के बाद लेखापाल ने वह रजिस्टर दिखाते हुए कहा–अब आगे मैं इस कार्य को नहीं कर सकता, क्योंकि लिखते-लिखते थक गया हूं।

इन्द्र ने नई व्यवस्था करते हुए कहा–कल से उसे स्वयं को कह दो, वह लिख लेगा। एक साल के बाद उससे रजिस्टर मंगवाया, देखा तो कोरा रजिस्टर था। जैसा दिया था, वैसा ही लौटा दिया। इस घटना से स्पष्ट हो जाता है कि कोई स्वयं के पाप का प्रायश्चित करना नहीं चाहता।

अपेक्षा तो यह है कि आचार्य भिक्षु की तरह अपने दोषों को अपने हाथों से लिखें। कम-से-कम छोटा प्रतिक्रमण तो पाप होते ही कर लिया जाए।

पर्युषण मनाने की विधियां अनेक हो सकती हैं। कई प्रदर्शन एवं आडंबर से मनाते हैं। कई बड़े आयोजन करते हैं। कई बोलियां लगाते हैं। कई चंदा, अर्थसंग्रह करते हैं। आमोद-प्रमोद जैसे कुछ कार्यक्रम भी हो जाते हैं, सही मायने में इसे निष्ठा से मनाया जाए।

इन आठ दिनों में तो अवश्य प्रतिक्रमण करें, क्योंकि प्रतिक्रमण आत्म-विशुद्धि का महान मंत्र है। यह स्वयं, स्वयं को देखने का आईना है। यह पवित्रता का पर्व है। अतीत की भूलों को सुधारता है। वर्तमान का प्रत्याख्यान है, भविष्य का संकल्प करता है। साधना के क्षेत्र में प्रतिक्रमण का बहुत मूल्य है। ❐

श्रेष्ठ कौन

अमोलकचंद जैन

कभी-कभी मनुष्य की स्वार्थांधता पर अत्यंत विस्मय होता है, किंतु यह सत्य है कि अधिकतर मनुष्यों के भीतर शैतान का ही निवास है, वह अपने हित के लिए दूसरे का अहित करने में जरा भी संकोच नहीं करता। इतना स्वार्थ से भरा है कि मनुष्यता पर भी कलंक लगा देता है। जो कुछेक मनुष्य संतों की शरण में रहकर परहित में, परोपकार में लग गए हैं, वे ही मनुष्य, मनुष्य कहलवाने योग्य हैं वरना तो मनुष्य को मनुष्य कहना भी उचित ही नहीं है, वह तो पशु-पक्षी और जानवर से भी नीचे स्तर पर चला गया है। जिसका मूल कारण है–स्वार्थ।

मैंने एक महात्मा से कथा सुनी थी कि एक बार सभी पक्षियों ने एक विशाल वन में एक सभा का आयोजन किया। पक्षियों ने तोता, मैना, काग, कोयल, मोर, चिड़िया, बाज इत्यादि के प्रमुखों को निमंत्रण दिया और उस सभा की अध्यक्षता बंदर से कराई।

सभा में एक प्रश्न आया कि इस जगत के प्राणियों में सबसे श्रेष्ठ कौन है? सभी ने अपने-अपने विचार रखे। अंत में बंदर ने अध्यक्षीय भाषण में कहा–मेरा तो मत है कि प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य है। मनुष्य समझता है, जानकार है, वह प्रभु का भजन करता है और उस योनि में रहकर मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है। हम सभी पशु-पक्षी मनुष्य की तरह प्रभु भजन नहीं कर सकते व मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। बंदर की बात का काग ने विरोध किया, वह बोला–मेरी दृष्टि में तो सभी प्राणियों में निकृष्ट मनुष्य है, वह अत्यंत स्वार्थी है और उसके भीतर शैतान का निवास है।

इस तरह वाद-विवाद चल रहा था कि इस बहस में हिस्सा लेने वालों ने मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी घोषित कर दिया। सभा समाप्त होने को ही थी कि एकाएक सभी ने देखा कि एक मनुष्य भागता भागता उस वनखंड में उनकी ओर आ रहा है, आते ही उसने बंदर से कहा–भैया! मैं संकट में हूं, मेरे पीछे वनराज सिंह दहाड़ते हुए आ रहे हैं, मेरा शिकार कर लेंगे, मुझे बचाओ। वृक्ष पर पक्षी बैठे थे, बंदर भी एक शाख पर था, नीचे आया और मनुष्य का हाथ पकड़कर उसे वृक्ष पर खींच कर एक डाल पर बिठा दिया।

इतने में ही गर्जना करते हुए सिंह आ पहुंचा। उसने मनुष्य को पेड़ पर बंदर व अन्य पक्षियों के साथ बैठे देखा। वनराज नीचे बैठा और बंदर से कहा–देखो, हम सभी इस वन के जीव हैं, मनुष्य मेरा शिकार है, मैं भूखा भी हूं, इसलिए तुम इसे धक्का देकर नीचे फेंक दो तो मैं अपना शिकार कर क्षुधा शांत कर चला जाऊंगा।

बंदर ने कहा–हे वनराज! आप हमारे जंगल के राजा हैं, किंतु मनुष्य को मैंने वचन दिया है, मैं इसे नीचे फेंक कर इसके साथ धोखा नहीं कर सकता। ऐसा कृत्य करना तो सबसे नीच कार्य है। अतः आप इस मनुष्य को छोड़ दें।

वनराज बैठा रहा, प्रतीक्षा करता रहा। बंदर की बात को अन्य पक्षियों सहित मनुष्य ने भी सुना। वह भयभीत भी था, किंतु वह आशान्वित शब्दों को सुनकर थोड़ा शांत भी हुआ कि अब मैं बच गया हूं।

थोड़ी देर पश्चात रात्रि होने लगी, सभी पक्षी सो रहे थे, बंदर को भी नींद आने लगी तो वह शाख पर सो गया। मनुष्य जाग रहा था। अब वनराज ने धीरे से मनुष्य को कहा–'देख, मैं तुझे छोड़ दूंगा, तुम नींद में सो रहे इस बंदर को धक्का देकर नीचे गिरा दो तो मैं इसका शिकार कर लूंगा और चला जाऊंगा।

अब देखिए, जिस बंदर ने मनुष्य को शरण दी, उसका साथ दिया, उसको बचाया, उसी मनुष्य ने अपने स्वार्थ पर ध्यान देकर वनराज के कहे अनुसार सोए हुए बंदर को धक्का दे दिया। मनुष्य कितना निकृष्ट निकला, उसके मन में जरा भी मनुष्य या मानवता के लक्षण नहीं थे।

एक महात्मा ने कहा था कि, चाहे कोई कुछ भी कर ले, परमात्मा जो चाहता है, वही होता है, होनी ही होती है, अनहोनी नहीं। ज्योंही बंदर को धक्का दिया, वह नींद से जागा, वह गिर तो गया, किंतु तत्काल कूद कर उसने दूसरी शाख पकड़ ली, पुनः अपने स्थान पर आ गया। बंदर बच गया, उसकी जान में जान आ गई तो उसने पक्षियों को जगाकर कहा–हमें काग को धन्यवाद देना चाहिए कि उसने जो बात कही थी, वह सत्य है कि मनुष्य धोखेबाज है, निकृष्ट है, उसके भीतर शैतान है। यह आज हमने प्रत्यक्ष देख लिया है।

सभी ने प्रस्ताव लेकर काग को धन्यवाद दिया और मनुष्य को धिक्कारा कि हमने तुम्हारे प्राण बचाए और तुम हमें ही अपने स्वार्थवश मारने को तैयार हो गए, मौत के मुंह में धकेल दिया, किंतु हे मनुष्य! सुनो, इस सृष्टि को चलाने वाले परमात्मा सभी की रक्षा करते हैं। यह तुम नहीं समझते, हम उस पर श्रद्धा और विश्वास रखते हैं।

महात्मा ने आगे कहा–घटना को विराम दे रहा हूं, उसके पश्चात उस मनुष्य का क्या हुआ? वनराज ने क्या किया, चले गए या उस मनुष्य के उतरने की प्रतीक्षा करते रहे? लेकिन एक बात आप सभी से पूछता हूं कि तुम जितने भी लोग यहां प्रवचन सुन रहे हो, अपने भीतर झांककर देखना कि तुम्हारे भीतर मनुष्य है या शैतान? कल इस प्रश्न का उत्तर देना। अगले दिन प्रवचन में महात्मा ने उत्तर पूछा तो सभी निरुत्तर थे, मौन थे, अपनी गर्दन नीचे झुकाए बैठे थे।

हमारे सामने भी अब यह प्रश्न खड़ा है, स्वयं प्रश्न उत्तर की प्रतीक्षा में है। क्या हम उत्तर देने की स्थिति में है, अगर उत्तर दें तो सत्यता से दें। ❐

अनहोनी होवे नहीं, होनी होय सो होय।
चिंता उसकी कीजिए, जो अनहोनी होय।।

स्वास्थ्य-प्रतिबोध

1. शारीरिक श्रम
2. सत्संकल्प
3. मानसिक शुद्धि
4. खाद्याखाद्य का विवेक
5. सरल व मृदु व्यवहार
6. असंदिग्ध वृत्ति
7. शरीर विज्ञान का बोध
8. हार्दिक समर्पण

हम सब साधक हैं। इसलिए साधना हमारा सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है। हमारी साधना करने का साधन शरीर है। इसलिए शारीरिक अस्वस्थता से साधना निर्विघ्न नहीं हो सकती। निर्विघ्न साधना करने के लिए अपने स्वास्थ्य की ओर हमेशा ध्यान रखना चाहिए। हम अस्वास्थ्य पैदा करने वाले कारणों से बचते रहें, यही स्वस्थ रहने का सबसे सुंदर साधन है। यदि निम्न बातों की ओर हम सदा सचेष्ट रहें तो सहज ही हम स्वस्थ रह सकते हैं–

स्वस्थ बने रहने के लिए नियमित शारीरिक श्रम अत्यंत आवश्यक है। जो लोग बिलकुल ही शारीरिक श्रम नहीं करते, वे बहुधा बीमार हो जाते हैं। श्रम कितना करना चाहिए–इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं हो सकती, क्योंकि हर व्यक्ति की क्षमता एक जैसी नहीं होती। इसलिए इसका समाधान इतना ही है कि अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार अपने शरीर को अक्लांत करने वाला श्रम करना चाहिए। आसन व प्रात:कालीन भ्रमण इस दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं। आसनों से जहां शरीर में लचीलापन आता है, वहां प्रात:कालीन भ्रमण से हमें प्राणवायु मिलती है, जो कि हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है।

संकल्प में अद्भुत शक्ति होती है। संकल्प-शक्ति के माध्यम से कठिन से कठिन कार्य भी बहुत सहजतया किये जा सकते हैं। सदा स्वस्थ बने रहने व खोये हुए स्वास्थ्य को पुन: प्राप्त करने के लिए भी सत्संकल्प बहुत उपयोगी है। रात्रि में सोते हुए व प्रात: उठते हुए 'स्वस्थोऽहं' (मैं स्वस्थ हूं) इस संकल्प का नियमित व दीर्घकालिक अभ्यास हमारे शारीरिक स्वास्थ्य पर एक चामत्कारिक असर कर सकता है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए मानसिक शुद्धि की अनिवार्य अपेक्षा है। मानसिक शुद्धि के अभाव में शारीरिक स्वास्थ्य असंभव है। घुटन व कुंठा मानसिक अशुद्धि का ही परिणाम है। अधिकांश शारीरिक बीमारियां इन्हीं की देन है। यदि इस घुटन व कुंठा से सर्वथा बचते हुए मानसिक प्रसन्नता का अभ्यास किया जाए तो अस्वस्थता नजदीक ही नहीं आयेगी। मानसिक प्रसन्नता का हमारे शरीर पर बहुत ही गहरा असर पड़ता है। इसलिए मानसिक शुद्धि की ओर विशेष लक्ष्य रहना चाहिए।

खाद्याखाद्य का विवेक भी स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। हमें क्या खाना चाहिए, कब खाना चाहिए व कितनी बार खाना चाहिए–इन सभी बातों का सही ज्ञान होना चाहिए। जो वस्तुएं हमारे मन और शरीर पर बुरा असर करती हैं, उनसे परहेज करना चाहिए। हमारा आहार हित (शीघ्रपाचक, बलकारक व विकार रहित भोजन करना, विरुद्ध व विकृत भोजन से परहेज करना) मित (परिमित भोजन करना, ठूंस-ठूंस कर न खाना) व सात्त्विक (मादक व उत्तेजक भोजन से परहेज करना)

होना चाहिए। हमारा अधिक मिर्च-मसाले वाली, तली, खट्टी-मीठी चीजों से बन सके वहां तक परहेज रहना ही अच्छा है। इस संबंध में साधु-साध्वियों में पहले की अपेक्षा विवेक जाग्रत हुआ है।

हमारे दैनिक व्यवहारों एवं पारस्परिक संबंधों का भी स्वास्थ्य पर बहुत गहरा असर पड़ता है। हमारा व्यवहार व पारस्परिक संबंध जितना सरलतापूर्ण व मृदु होगा, उतना ही हमारे मन में संतोष होगा तथा दूसरों पर भी सहज अनुकूल प्रतिक्रिया होगी। मानसिक प्रसन्नता व मानसिक संतोष का हमारे शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

वहम भी एक बीमारी है। मात्र दूसरों के प्रति ही नहीं, स्वयं के प्रति भी वहम नहीं करना चाहिए। वहम के कारण व्यक्ति अपने कार्य में असफल हो जाता है और उस असफलता का सीधा प्रभाव उसके मन पर पड़ता है। जब मन अस्वस्थ होता है तब शारीरिक स्वास्थ्य की कल्पना ही कैसे की जा सकती है?

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हमें अपने शरीर के अंग-प्रत्यंगों का ज्ञान होना चाहिए। शरीर के कौन-से अंग का क्या कार्य है, इसको जानना भी अत्यंत आवश्यक है। जब तक हम अपने शरीर की प्रकृति व स्थिति का सम्यग् बोध नहीं करेंगे, तब तक उसको पूर्ण स्वस्थ रखना कठिन है। आज विज्ञान ने इस संबंध में बहुत गहरी खोज की है। साधु-साध्वियों को भी इनसे अनभिज्ञ नहीं रहना चाहिए।

साधु-साध्वियों में गुरु के प्रति हार्दिक समर्पण की भावना का विकास होना चाहिए। शाब्दिक समर्पण तो मात्र औपचारिकता है। वास्तविक समर्पण तो हार्दिक ही है। जहां हार्दिक समर्पण होता है, वहां आचार्य की बहुत-सी कठिनाइयां सहज समाप्त हो जाती है और स्वयं के दिमाग पर भी कोई भार नहीं रहता। हमारे पुराने साधु-साध्वियों में यह संस्कार बहुत गहरा था। वर्तमान में काफी साधु-साध्वियों में यह संस्कार है फिर भी इस दिशा में और अधिक विकास करने की अपेक्षा है। ❐

धर्म की परख

जयाचार्य

परखो धर्म पुनीत, भविक जन! ओलखो धर्म पुनीत।

आण बिना नहिं अंश धर्म नों, सूत्र सिद्धांत संगीत।
लवण रहित जि विरस रसवती, सरस्वती वचन-रहीत।।

दधि रहित जिम ओदन कहियै, भोजन घिरत-रहीत।
खांड रहित जिम मोदक जाणै, गंगोदक आधार-रहीत।।

मद रहित एरावण हस्ती, ब्राह्मण वेद-रहीत।
परिवार-रहित जिम नायक नरपति, पायक शस्त्र-रहीत।।

फल-रहित जिम वृक्ष न शोभै, भिक्षु तपस्या-रहीत।
वेग-रहीत नहिं शोभै तुरंगम, संगम प्रेम-रहीत।।

वस्त्र-रहित शृंगार न शोभै, अलंकार स्वर्ण रहीत।
तिम जिन-आज्ञा बिन धर्म न दीपै, निगम बतावै नीत।।

कहानी

उत्कर्ष और अपकर्ष की

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

आजादी के पूर्व हमारे दादा-परदादा के जमाने में बड़े-बुजुर्गों ने यह कल्पना भी नहीं की होगी कि शताब्दियों तक असूर्यंपश्या रहने वाली भारतीय नारी पर्दा और घूंघट की ओट से बाहर आ सकेगी, उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकेगी, मंच पर खड़ी होकर धाराप्रवाह बोल सकेगी और समाज व राष्ट्र का प्रतिनिधित्व कर सकेगी। बीसवीं शताब्दी के दशक जैसे-जैसे आगे बढ़ते गए, वैसे-वैसे महिलाओं की मुश्किलें दूर होती गईं, समय उनके अनुकूल होता गया और उनके कदमों की गतिशीलता ने अप्रत्याशित सफर तय कर लिया। यदि यह माना जाए कि संपूर्ण बीसवीं शताब्दी ही महिलाओं के नाम नहीं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

उत्कर्ष और अपकर्ष की कहानी

वेद, पुराण आदि धर्मग्रंथों में नारी के स्वरूप की जो चर्चा हुई है, वह काफी महिमा-मंडित रही है। उसे पुरुष के समासीन प्रकृति रूप में रखा गया है। वहां उसे अर्द्धनारीश्वर की संज्ञा भी प्राप्त है। उसके बिना पुरुष का कोई अनुष्ठान पूरा नहीं होता था। सामाजिक सद्भावना और गार्हस्थ्य जीवन की महत्ता प्रतिपादित करने वाले धर्मग्रंथों में तो यहां तक भावना व्यक्त की गई है कि प्रकृति-रूपिणी नारी के बिना राम, कृष्ण और शिव तक अधूरे हैं।

भारतीय नारी के लिए मुगलकाल कुछ नई समस्याएं लेकर आया। उसके कारण उसकी सारी महिमा ही समाप्त हो गई। मुगल शासकों की वक्र और कुत्सित दृष्टि भारतीय महिला पर पड़ी तो उसकी अस्मिता को खतरा पैदा हो गया। वे किसी सुंदर महिला को देख लेते तो जबरदस्ती उसे अपने अधिकार में ले लेते। कभी-कभी तो ऐसा भी होता कि एक देश का राजा दूसरे देश की रानी को प्राप्त करने के लिए युद्ध करने के लिए तत्पर हो जाता। दोनों ओर की सेनाएं आमने-सामने हो जातीं। भयानक खून-खराबा होता और पीढ़ी-दर-पीढ़ी शत्रुता की बुनियादें रख दी जातीं।

मुगलकाल में नारी पुरुषों के हाथों की कठपुतली बन गई। पुरुष उसे खिलौना समझकर जब तक चाहता, मन बहलाता और जब उससे मन भर जाता, तब वह सहचरी न रहकर उसकी अनुचरी और क्रीतदासी मात्र बन जाती। मुगलकाल में हुई अनेक लड़ाइयों का एक बड़ा कारण था—नारी को येन-केन-प्रकारेण अनुचित रूप से प्राप्त करने की लालसा।

नारिवर्ग ने समय-समय पर अपनी जागृति एवं शक्ति का पूरा परिचय दिया। उसने समाज को यह बता दिया कि नारी के हाथों में केवल रोली-चंदन ही नहीं रहता, उसके आंचल में दूध और आंखों में पानी ही नहीं होता, बल्कि समय आने पर वह दुर्गा के रूप में अन्याय और अत्याचार के प्रतिरोध में भी खड़ी हो सकती है।

कुप्रथाओं का जन्म

परिस्थितियों की इस विषमता के कारण भारतीय परिवार में कन्या का जन्म लेना ही अशुभ एवं कलंकमय माना जाने लगा। कुछ हिंदू परिवारों में तो कन्या का जन्म होते ही उसे आक का दूध पिला दिया जाता। वह कन्या सृष्टि में आकर ठीक से आंख खोल पाती, उससे पहले ही उसकी आंख सदा के लिए बंद हो जाती। महाकवि कालिदास ने इस स्थिति को अपने अमर काव्य 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में इस प्रकार रूपायित किया है–

पुत्रीति जाता महतीह चिंता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्त्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति,
कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्।।

यही वह संकट वेला थी, जहां से भ्रूणहत्या प्रारंभ हुई। मुगलों के अत्याचार एवं नारी दुर्दशा का अनुभव करते हुए भारतीय परिवारों के लोग आठ-दस वर्ष की कन्या का विवाह करने लग गए। परिणामस्वरूप बाल विवाह की परंपरा चल पड़ी। महिला के विकास पर कुठाराघात होने के साथ ही एक और रूढ़िवादी परंपरा ने अपने पांव पसारे। उस परंपरा को 'सती-प्रथा' के नाम से प्रतिष्ठित किया गया। पति का स्वर्गवास होने के बाद महिला अपनी अस्मत सुरक्षित रख सकेगी या नहीं, इस समस्या के समाधानस्वरूप सती-प्रथा सामने आई।

यही नहीं, अपनी अस्मत या अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए भारतीय महिला घर की चारदीवारी में कैद हो गई। कई महिलाओं ने तो वर्षों तक सूर्योदय भी नहीं देखा। बहुत आवश्यक होने पर यदि कभी उसके घर से बाहर निकलने का प्रसंग आता तो उसे लंबा घूंघट निकाल कर ही जाना होता। आगे चलकर इस प्रवृत्ति ने भी परंपरा का रूप ले लिया, जो पर्दा-प्रथा के रूप में आज भी किसी न किसी रूप में चल रही है।

आशा की नई किरण

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ का समय नारी जाति के लिए आशा की किरण लेकर आया। एक ओर भारतीय स्वाधीनता के लिए उठने वाले जन-जागरण के स्वर मुखरित हो रहे थे तो दूसरी ओर नारी-स्वातंत्र्य के आंदोलन भी जोर पकड़ने लगे। देश के वीर-बांकुरे आजाद भारत का सपना साकार करने की दिशा में संघर्षरत थे और भारत का महिला वर्ग अपने अस्तित्व को सुरक्षित एवं मजबूत रखने का प्रण लेकर गतिमान हुआ।

नारिवर्ग ने समय-समय पर अपनी जागृति एवं शक्ति का पूरा परिचय दिया। उसने समाज को यह बता दिया कि नारी के हाथों में केवल रोली-चंदन ही नहीं रहता, उसके आंचल में दूध और आंखों में पानी ही नहीं होता, बल्कि समय आने पर वह दुर्गा के रूप में अन्याय और अत्याचार के प्रतिरोध में भी खड़ी हो सकती है।

इस प्रकार नारी जागृति का कारवां सफलता की दिशा में आगे बढ़ता गया। एक सघन खामोशी और ठहराव की स्थिति भंग हुई। उसकी चेतना ने सकारात्मक दिशा में करवट ली। जो खड़ी होकर दो शब्द भी नहीं बोल सकती थी, वह नारी आश्चर्यजनक रूप में मुखर हो उठी। उसने शिक्षा के क्षेत्र में अपना विकास किया, अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास किया। वह अध्यापक बनी, प्राचार्य बनी, वकील बनी, और सरकार

के उच्च एवं महत्त्वपूर्ण पदों तक पहुंची। बढ़ते-बढ़ते उसने समाज एवं राष्ट्र के दायित्व को भी समझा और उसका कार्यभार भी अपने कंधों पर उठाया। वर्तमान समय में देश के शासन-प्रशासन के सफल संचालन में भी उसकी अहम भूमिका है। नारिवर्ग ने समाज को अवगत कराया कि वह सिर्फ जननी और जाया ही नहीं है, अपितु भविष्य की प्रतिनिधि भी है। उसका कार्यक्षेत्र घर की सीमा रेखा तक ही सीमित नहीं है, बाहर के खुले वातावरण में भी उसके वैचारिक वायुयान सफलतापूर्वक उड़ान भर सकते हैं।

अभी मंजिल आगे है

आज भी हमारे समाज में संकुचित विचारों के कुछ लोग हैं, जो नारी को घर से बाहर जाने देने में संकोच का अनुभव करते हैं और उसके प्रगतिशील कदमों को आगे बढ़ता देखकर झिझक का अनुभव करते हैं। वे नहीं समझ पा रहे हैं कि महिलाओं के लिए स्वतंत्रता, शिक्षा और स्वावलंबन उतना ही आवश्यक है, जितना पुरुषों के लिए। विकास की कोई मंजिल नहीं होती। विकास के शिखर की ऊंचाई अमाप्य होती है। महिला-वर्ग घर की कारा से मुक्त होकर रूढ़ियों और परंपराओं के जीर्ण-शीर्ण आवरण को उतारकर आज जिस मुकाम पर अवस्थित हुआ है, वह संतोष का विषय है। उसे अभी और आगे बढ़ना है। अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखते हुए महिला-वर्ग प्रगति की दिशा में निरंतर कदम आगे बढ़ाता रहे।

इक्कीसवीं सदी महिला-विकास की दृष्टि से चरमोत्कर्ष का समय बने और महर्षि अरविंद की यह भविष्यवाणी कि इक्कीसवीं सदी महिलाओं की होगी, सही प्रमाणित हो। मानवीय एवं चारित्रिक–दोनों स्तरों पर जिस समय महिलाएं उत्कर्ष पर पहुंचेंगी, वह क्षण आधी दुनिया के लिए गौरवपूर्ण क्षण होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। ❐

बिना हक अधिकार कैसा?

एक सेठ के मकान की नींव खोदते समय मजदूरों को जमीन में मुहरों से भरा हुआ एक बरतन मिला। उन्होंने सोचा कि इसकी चर्चा ठेकेदार से करनी चाहिए, क्योंकि हम उसी की मातहत काम कर रहे हैं। मजदूरों ने ठेकेदार से चर्चा की।

ठेकेदार ने सोचा कि यह जमीन तो सेठजी की है। मैं तो केवल मकान बनाने का काम कर रहा हूं। अतः इस धन पर मेरा कोई अधिकार नहीं। यह तो सेठजी का है।

सेठ ने ठेकेदार से सारी बात सुनकर विचार किया कि मैंने जमीन अवश्य खरीदी है, किंतु इसमें गड़ा हुआ धन तो नहीं खरीदा है। अतः इस पर मेरा अधिकार नहीं हो सकता। यह तो राजा का है। सेठ ने राजा से सारी बात कही।

राजा ने सोचा कि जब मैंने जमीन बेच दी, तब उसमें से निकलने वाली किसी भी वस्तु पर मेरी मिल्कीयत नहीं हो सकती। इस जमीन से निकला यह धन सेठ का है।

यदि इन लोगों के मन में अनधिकृत वस्तु पर अधिकार करने की भावना होती तो कोई भी उस धन को हड़प सकता था। क्या आज के मनुष्य का चिंतन ऐसा हो सकता है? वह तो शायद ऐसा करने वालों को मूर्ख ही मानता होगा। पैसे-पैसे के लिए जो अपनी प्रामाणिकता समाप्त कर सकता है, वह नैतिकता के इस आदर्श तक कैसे पहुंच सकता है?

अहिंसा

हरिवल्लभ बोहरा 'हरि'

टिक... टिक... टिक... ।

अस्पताल के गहन सन्नाटे को तोड़ती दीवार घड़ी की आवाज ने आपरेशन थियेटर के बाहर बैंच पर बैठे अजय के लिए वातावरण को और ज्यादा रहस्यात्मक बना रखा था। बेचैनी के साथ पहलू बदलते अजय का हाथ बार-बार चेहरे पर चुहचुहा आई पसीने की बूंदों को पोंछने का असफल प्रयास करता। अनजाने भय और आशंका ने दिल की धड़कनों की गति अनायास ही बढ़ा दी थी। जब से थियेटर के गेट पर लगा लाल बल्ब जला है, अजय के लिए एक-एक पल काटना भारी हो गया है।

समय काटने के लिए उसने सिगरेट सुलगाई। अभी पहला कश ही खींचा था कि सामने की दीवार पर लगे निर्देशपट्ट 'धूम्रपान वर्जित है' ने उसे चौंका दिया। उसने झट से जली हुई सिगरेट बुझाकर कूड़ेदान में डाल दी। निर्देश की पालना करना खुद अजय को भी अजीबोगरीब लगा। तीन साल पहले यह बोर्ड तो क्या, स्वयं डाक्टर के कहने पर भी वह जली सिगरेट कदापि नहीं बुझाता, परंतु तीन साल में कितना कुछ बदल चुका था।

तभी अचानक गेट खुला। एक नर्स ने बाहर की तरफ झांक कर देखा। अजय के अलावा किसी और को न देख वह खुद तत्परता से बाहर लपकी। गेट अपने आप बंद हो गया। सिस्टर के बाहर आने पर अजय बड़ी आशा के साथ उसकी ओर बढ़ा। मगर सिस्टर उसे बैंच पर बैठने का इशारा करती हुई तेज कदमों से आगे की ओर बढ़ गई। अजय मन मसोस कर जाती हुई नर्स को देखता रहा। कुछ ही पलों में नर्स वापस लौटी। इस बार उसके साथ वार्ड बॉय भी था। आक्सीजन के दो सिलेण्डरों सहित वे दोनों पुनः ऑपरेशन थियेटर में घुस गये। थोड़ी देर में ही वार्ड बॉय हांफता हुआ-सा बाहर निकला। लगभग दौड़ते कदमों के साथ वह खून की बोतल लिए हुए लौटा। बिना अजय की ओर एक भी नजर उठाये वह यंत्रवत गेट के भीतर गायब हो गया।

पहले आक्सीजन, फिर खून, यह सब सहना अजय के लिए दूभर था। जब आदमी का बस नहीं चलता तो वह प्रार्थना के लिए विवश हो जाता है। विवश अजय भी मन ही मन रचना की सलामती की दुआ मांगता अपने हाथ जोड़े प्रार्थना की मुद्रा में खड़ा हो गया। उसकी आंखों से पानी की बूंदें टपक पड़ी। भरी आंखों से उसने बायीं ओर की दीवार पर नजर घुमायी। कुछेक देवी-देवताओं के चित्रों के साथ ही गौतम, महावीर, नानक और गांधी के मुसकराते चेहरे उसके सामने झिलमिला गये। वह मन का मैल बहाता रहा। अंदर ऑपरेशन टेबुल पर जिंदगी और मौत की लड़ाई चल रही थी। लगता था जिंदगी जीतने वाली थी। जिंदगी भी बड़ी

अजीब है। कभी थकती ही नहीं। हर पल मौत से जूझती ही रहती है। जब तक जीवन है, मौत और जिंदगी का युद्ध जारी ही रहेगा।

लगभग दो घंटे बाद लाल बल्ब एक झटके के साथ बुझ गया। बल्ब बुझते ही अजय खड़ा हो गया। जैसे उसके शरीर का सारा खून दौड़ता-दौड़ता अचानक थक गया हो। पलकें झपकना भूल गईं, सारा ध्यान गेट पर लगा रहा। जिंदगी और मौत के फैसले का इंतजार सिवाय घड़ी की टिक-टिक के सभी कर रहे थे।

धीरे से गेट खुला। अजय की तंद्रा लौटी। सफेद चोगा पहने पसीने से तर-बतर चीफ सर्जन ने क़दम बाहर की ओर रखे। क्षणांश अजय की तरफ देख चीफ सर्जन ने नजरों की भाषा से ही आश्वस्त होने का संदेश प्रेषित कर दिया। सर्जन की तरफ आशामयी नजरों से ताकता अजय आगे बढ़ा। वह कुछ बोलता, उससे पूर्व ही सर्जन ने मुसकराते हुए कहा 'डोन्ट वरी मिस्टर। शी इज वैल।' और वह अपने कमरे में घुस गया। अजय कुछ और भी पूछना चाहता था, पर सर्जन के पीछे रूम में घुसने की हिम्मत नहीं हुई उसकी। उसने मन में सोचा–चलो रचना तो ठीक है। परंतु....।

फिर गेट खुला। मुसकराती हुई नर्स बाहर आयी। बोली–'चिन्ता मत करिये। थोड़ा टिपिकल केस था, पर अब सब ठीक है। जच्चा और बच्चा दोनों ठीक हैं।'

'बच्चा!' अजय का मन प्रसन्नता से झूम उठा।

'ऑह सॉरी मिस्टर। चांद-सी बेटी को जन्म दिया है आपकी बीवी ने। बाप बनने की बधाई।' कहती हुई सिस्टर ने हाथ बढ़ा दिया। 'थेंक्यू' कहते हुए अजय को कानों में मधुर संगीत बजता हुआ सुनाई दिया। उसके जेहन में गोल-मोल, छुईमुई-सी प्यारी-प्यारी एक तसवीर का खाका बनता गया।

'आइये, आफिस में कुछ कागजात साइन करने होंगे।' नर्स बोली। सहमति में सिर हिलाता अजय नर्स के पीछे बढ़ चला। चलते-चलते उसकी नजरें दीवार पर लगे चित्रों पर ठिठक गईं। उसका मन श्रद्धा से भर उठा। हाथ जोड़, सिर झुकाता रह गया अजय। आफिस में रजिस्टर की खानापूर्ति करती नर्स बोली–'अब केवल नाम का कालम ही बाकी रह गया है। शायद बीवी से सलाह करके ही नाम सोचेंगे?' उसकी आंखों में शरारत थी।

'नाम'! हमने पहले ही सोच रखा था कि लड़का होगा तो रचना नाम रखेगी और लड़की हुई तो मैं।' अजय धीरे से बोला।

'तब ठीक है। सोच लीजिये।' वापस कलम उठाती हुई नर्स बोली।

'अहिंसा' अजय ने निर्णय भरे स्वर में कहा।

'अहिंसा! क्या बात है।' हलकी ताली बजाते हुए पर्दा उठाकर चीफ सर्जन आफिस में आते हुए बोले।

एकाएक चीफ को वहां देख नर्स और अजय दोनों चौंक कर खड़े हो गए। 'अरे, बैठो-बैठो। रात ज्यादा हो गई है, तो मैंने सोचा–क्यों न गरमागरम काफी पीकर ही चलूं। सारी थकान जाती रहेगी। क्यूं सिस्टर?' सिस्टर की भी सहमति पाने के लिए सर्जन ने उसकी तरफ देखा। अजय भी शाम का भूखा था। अब तक तो उसने पानी का घूंट भी नहीं पीया था। सर्जन की दूरदर्शिता पर वह मुग्ध हो गया।

'वार्ड ब्वॉय काफी ले आयेगा। आप लोग बैठिये।' चीफ एक कुर्सी पर बैठता हुआ बोला। जब सब बैठ चुके तो सर्जन अजय की तरफ मुखातिब हुआ।

'मिस्टर अजय! यह अहिंसा नाम आपने कैसे सोचा?' सर्जन ने बातों में वक्त काटने की गरज से पूछा।

'इसके लिए मेरी अपनी बीती जिंदगी की घटना जिम्मेवार है।' कुछ सोचते-सोचते गंभीर स्वर में अजय बोला।

'हां, हां, हम सुन रहे हैं। तुम जारी रहो। हां, यदि कोई आपत्ति न हो तो?' सर्जन उत्सुकतापूर्वक बोला।

अजय ने कहना चालू किया।

'उन दिनों की बात है जब सारा शहर दंगों की चपेट में था। मेरी शादी हुए दो साल बीत चुके थे।

इंटरव्यू देते-देते मेरे जूते भी घिस गये थे। थोड़ा बहुत जो लिखकर भेजता इधर-उधर छप जाता। बड़ी मुश्किल से गुजर-बसर हो रही थी। उस पर मेरी बीवी रचना का पैर भी भारी था।

डॉक्टर ने एंबुलेंस में ऑपरेशन किया। बच्चा पेट में ही मर चुका था। जहर शरीर में फैलने ही लगा था। पेट चीरकर रचना को बचाया जा सकता था। दंगों ने मेरे अजन्मे बच्चे को लील लिया था। हिंसा के उस दौर ने मेरे घर की सारी खुशियां उजाड़ कर रख दीं।

जैसे-तैसे वातावरण शांत हुआ। दो माह बाद मेरी नियुक्ति शिक्षा विभाग में लिपिक के पद पर हो गई। पर उन हिंसक घटनाओं के घावों का रिसाव बड़ा दर्द देता है डाक्टर!' कहता हुआ अजय सिसक उठा। नर्स ने तुरंत एक गिलास पानी मुझे पीने को दिया। पानी पीकर मैं कुछ शांत हुआ। फिर बोला।

'विचारपूर्वक मनन करने पर मैंने पाया कि विरोध का हिंसक तरीका सभी के लिए दुःखदायी ही रहा है। जब अहिंसक तरीके से ही बात मनवायी जा सकती है तो हिंसा क्यों! हिंसा को त्यागने का सबक जीवन भर मुझे याद रहे, इसीलिये मैंने अपनी नवजात बच्ची का नाम 'अहिंसा' रखने का निर्णय लिया।'

तब तक कॉफी आ चुकी थी। सब ने कॉफी पी।

'हां एक बात और डॉक्टर। ऑपरेशन थियेटर के बाहर लगे गौतम, महावीर, नानक और गांधी के चित्र भी 'अहिंसा' के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी हैं। अहिंसा उन्हीं की तो देन है। आत्ममुग्ध-सा वह बोला।

तभी एक दूसरी नर्स ने आकर सर्जन से धीरे-से कान में कुछ कहा। सिर हिलाकर सर्जन मुसकराता हुआ बोला 'मिस्टर अजय! 'अहिंसा' ओर 'रचना' दोनों बिलकुल ठीक हैं। आप उनसे मिल सकते हैं।'

अजय उठा और जीती जागती 'अहिंसा' से मिलने 'रचना' के पास चल दिया। ❐

घर–परिवार और मित्र–परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर **'जैन भारती'** उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक–नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म–दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, **'जैन भारती'** अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती
एक संपूर्ण पत्रिका है।
वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए

जैन भारती
पढ़ें–सबको पढ़ाएं

व्यवस्थापक
जैन भारती
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
तेरापंथ भवन
महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401

रक्षा बंधन :

परंपरा का निर्वाह अथवा यथार्थ की परिणति

पदमचन्द पटावरी

रक्षा बन्धन का त्योहार एक बार पुनः दस्तक दे रहा है। भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ा यह त्योहार भाई और बहिन के पवित्र रिश्तों के नाम समर्पित है। प्रति वर्ष सावन महीने की पूर्णिमा का दिन जब चंद्रमा अपनी समस्त कलाओं के साथ शीतल चांदनी बिखेरता है उस दिन बहिनें अपने भाइयों की कलाई पर रक्षा सूत्र बांध कर एक बार पुनः पारस्परिक विश्वास, स्नेह और सम्मान की पुष्टि करती है। इससे भाई और बहिन के रिश्तों में नई दृढ़ता पैदा होती है। यदि कुछ अन्यथा भाव चाहे-अनचाहे आए भी हों, वे सभी धुलकर स्वच्छ हो जाते हैं। रिश्तों में पवित्र निर्मल धारा का प्रवाह प्रवाहित हो जाता है।

पौराणिक कथा प्रसंगों में रक्षा बंधन के साथ जुड़ने वाला एक प्रसंग है। जिसमें रानी कर्मावती द्वारा मुगल बादशाह हुमायूं को भेजी गई राखी का प्रसंग सर्वाधिक चर्चित है। जब जांत-पांत, धर्म से ऊपर उठकर बादशाह ने कर्मावती को बहिन का सम्मान देकर उसकी रक्षा की थी। सुभद्रा द्वारा पांडवों की रक्षार्थ सहयोग देने के लिए श्री कृष्ण को राखी बांधने का प्रसंग भी इतिहास में मिलता है।

रक्षा बंधन का त्योहार मन को बोध देने का प्रतीक बन जाता है। यदि पवित्र मन से धागा बांधा जाता है तो स्वार्थों की धूप ढल जाती है, अपनत्व की दुनिया का सृजन होता है और रिश्तों में पवित्र मिठास का संचयन हो जाता है।

जब-जब बहिनें भाई की कलाई पर राखी बांधती हैं उसमें सदिच्छा जागती है कि मेरे भाई की ये भुजाएं इतनी फौलादी बन जाएं कि कभी किसी अन्याय, अंधविश्वास के आगे नहीं झुके। जब-जब इन विसंगतियों से लड़ना पड़े तो भैया के हाथों में प्रकंपन्न न हो। बल्कि दृढ़ता प्रतीत होती है कि मेरे भैया सिर्फ बुराइयों से लड़ेंगे ही नहीं, हर चुनौती को भाग्य रेखा में बदल देंगे एवं हर खतरे से सुरक्षित बाहर निकल जाएंगे।

राखी का त्योहार दायित्व बोध की चेतना का संदेशवाहक भी है। यह आदर्शों की ऊंची मीनार है और सांस्कृतिक परंपरा की अद्वितीय कड़ी भी है। इसलिए बहिनें अपेक्षा करती हैं कि जब भी बहिन की अस्मिता पर संकट के बादल उमड़-घुमड़ आएं, बहिन की पुकार सुनकर भाई सब कुछ छोड़कर बहिन की रक्षा के लिए दौड़ पड़े, यदि बहुत कुछ दावं पर लगाना हो तो भी

उससे नहीं चूके और बहिन की रक्षा कर राखी के कर्ज को उतारने में सहभागी बने।

आज बदलते परिवेश में भ्रातृत्व की सीमाओं को भी चुनौती प्राप्त हो रही है। यद्यपि कानूनन बहिन को बराबरी के अधिकार देने की बात भी सुर्खियों में है, पर अनेक जगह भाई अपनी बहिनों के प्राप्त अधिकारों का शोषण करते दिखाई देते हैं, तो कहीं बहिनें भी सामान्य अर्थ आदि के लालच में भ्रातृत्व के पवित्र रिश्तों को ताक पर रखकर कानून की ओट में भाइयों को कोर्ट कचहरी में घसीटती नजर आती हैं। यह स्थिति निश्चित रूप से भाई-बहिन के पवित्र रिश्तों पर बदनुमा दाग से कम नहीं है।

आज जो परिप्रेक्ष्य दिखाई दे रहा है वह भी कम चिंता का विषय नहीं है। प्रतिदिन दूरदर्शन एवं प्रिंट मीडिया में नारी उत्पीड़न के संवाद भरे पड़े रहते हैं। दहेज के नाम पर आज भी नारी जाति के साथ हो रहे खिलवाड़ ने उसे अब भी तोल मोल से बाहर नहीं निकलने दिया है। यहां पुरुष वर्ग का मौन रहना चिंता का विषय है। कन्या भ्रूण हत्या जैसे घृणित और घिनौने कर्मों में पुरुषों की भूमिका संदेह से परे नहीं है। यह पुरुष भविष्य में राखी की परंपरा को ही समाप्त कर देने के लिए जैसे उठ खड़ा हुआ है। क्या ये प्रसंग भाइयों के लिए चुनौती से कम हैं।

देशभर में रेप की घटनाएं जिस कदर बढ़ रही हैं और उनका ग्राफ जिस तेजी से बढ़ता जा रहा है, उसे देख-सुनकर दिल अंदर तक हिल उठता है। अपने कुत्सित कार्य कलापों से कलंकित करने वाले ये आंकड़े बताते हैं कि 94 प्रतिशत रेप की घटनाओं में लड़का-लड़की एक-दूसरे को संभवतः जानने पहचानने वाले ही होते हैं। यह कितनी बड़ी विडंबना है। संपूर्ण पुरुषप्रधान संस्कृति का मस्तक इससे शर्म से झुके बिना नहीं रहता।

एक ओर यह दृश्य है तो दूसरी ओर ऐसे घटना प्रसंग भी हैं जब राखी की सौगंध खाकर अनेक भाइयों ने अपने रास्ते बदल लिए, अपने को असंस्कारों की अंधी गलियों से बाहर निकाल लिया, अपने जीने के तौर तरीके बदल दिए सिर्फ इसलिए कि यह बहिन के कलाई पर बांधे धागे की पुकार थी। राखी मात्र कच्चा धागा नहीं होता, बहन के सम्मान और विश्वास का अनुबंध होता है।

जब राखी की बात करते हैं तो यह कहना भी वजनी है कि राखी की कीमत का अनुभव वे भाई ज्यादा करते हैं जिनकी बहिनें नहीं हैं। उन्हें चाह कर भी अपनी सूनी कलाई की ओर बरबस निहारना पड़ता है। ठीक इसी तर्ज पर वे बहिनें भी उदास और गमगीन दिखाई देती हैं जिन्हें अपनी मां की कोख से भाई जैसा अमूल्य उपहार नहीं मिला। ऐसे अवसर पर उनके हाथों का आरती का थाल भ्रातृत्व के पूर्ण स्नेह भरे दुलार की बस प्रतीक्षा मात्र कर सकते हैं।

यद्यपि रिश्तों की दुनिया के इस त्योहार का आना जाना बना हुआ है। इन राखी के धागों का स्थान सुंदर-शानदार राखियां ले रही हैं। इसमें निरंतर इजाफा हो रहा है, पर कभी-कभी लगता है कि भाई बहिन की पारस्परिकता से छनकर आने वाली पवित्र स्नेह की धार कहीं न कहीं कमजोर पड़ रही है। रिश्तों के बीच औपचारिकताओं ने अपने आसपास जो अहसास दिए हैं, इससे संवेदनाओं का ग्राफ नीचे आ रहा है। मैं सोचता हूं, हमें इस ओर दृष्टिपात कर इन स्थितियों का परिमार्जन करना है।

अपेक्षा है दायित्व बोध के भाव उन्नत हों, जहां भाई अपने कर्तव्य से च्युत न होने का दृढ़ संकल्प स्वीकार करे वहां बहिनें निश्छल प्रेम व सम्मान की धार को और तेज करने का व्रत ले। यदि ऐसा हुआ तो यह महान त्योहार पवित्र रिश्तों की नई दास्तां बन जाएगा। और इससे सिर्फ भाई बहिन ही लाभान्वित नहीं होंगे बल्कि पूरा परिवार, परिवेश व समाज उपकृत होगा। परस्पर विश्वास का यह दौर सृजन के नए गीत गुनगुनाएगा–जिससे रक्षा बंधन का त्योहार जन-मन के हृदय कमलों में नया स्पंदन पैदा कर सकेगा। ❐

चींटी और उसका दर्शन

यह एक मामूली किस्सा है, जिससे हाल ही में मेरा सामना हुआ।

एक आदमी मुझसे मिलने आया, उसने बताया–'मैं मुंबई में पैदा हुआ और अब न्यूयार्क में बस रहा हूं। मैं सुबह साढ़े सात बजे घर से काम पर निकलता हूं और रात साढ़े आठ बजे वापस घर पहुंचता हूं। मुझे अपने दफ्तर के काम भी पूरे करने होते हैं और साथ ही अपनी पत्नी और परिवार को भी कम ही सही, पर काफी वक्त देना होता है। मैं तनाव में हूं और नहीं समझ पा रहा हूं कि कैसे अपनी जिंदगी में संतुलन लाऊं...और मैं यह पाता हूं कि मेरी जिंदगी बड़ी बेढ़ब हो गई है?'

मैंने कहा–'सच तो यह है कि आप व्यस्त हैं और आपने अपने रहने के लिए भी एक व्यस्त शहर को चुना है। यह आपका चुनाव है। अब आप अपने चुनाव में एक और बात जोड़ लीजिए कि इन सबके बावजूद मैं शांत, संतुलित रहना सीखूंगा और अपने संबंधों को बढ़िया बनाऊंगा। जिंदगी एक सुंदर चित्र बनाने जैसी है, न कि अंकगणित जैसी। चित्रकार अपनी कला के जरीए अपनी दुनिया का चुनाव खुद करता है।'

उस आदमी ने पूछा–'अपनी व्यस्त दिनचर्या के बावजूद, मुझे क्या करना चाहिए, ताकि मैं अपनी पत्नी और परिवार के साथ अच्छा वक्त गुजार सकूं और साथ ही शांत और स्वस्थ रहकर अपने दफ्तर के लक्ष्यों को भी हासिल कर सकूं?'

मैंने कहा–'आप ध्यान से एक चींटी को देखिए और अपनी जिंदगी को व्यवस्थित करना सीखिए। चींटी इतनी बड़ी दुनिया में अपने सामने आने वाली हर मुसीबत को पार कर लेती है।'

'एक चींटी?'–उसने पूछा।

अगर एक चींटी को ध्यान से देखेंगे, तो आप बहुत कुछ सीख सकते हैं–

- वह परिस्थितियों के हिसाब से खुद को ढालने में इतनी माहिर होती है कि आप उसके सामने चाहे जैसी भी रुकावटें खड़ी कर दें, लेकिन वह उसके किनारे से घूमकर, नीचे से या फिर ऊपर से होकर निकल जाएगी। परिस्थितियों के हिसाब से खुद को ढाल लेना चींटी का एक बहुत बड़ा गुण है।
- चींटी कभी भी हार नहीं मानती और अपने लक्ष्य पर नजर जमाए रखती है। उसका नजरिया होता है कि 'विजेता कभी मैदान नहीं छोड़ते और मैदान छोड़कर भागने वाले कभी जीत नहीं सकते'।
- उसमें योजना बनाने की जबरदस्त क्षमता होती है–जब गर्मी होती है, तो वह सर्दी की योजना बनाती है।
- धैर्य–जब सर्दी होती है, तो वह धैर्यपूर्वक गर्मी का इंतजार करती है।
- अपना सबसे बढ़िया परिणाम देने के प्रति वचनबद्ध–किसी भी वक्त अपने काम को पूरा करने के लिए वह हर संभव जतन करती है और चाहे कितना भी मामूली काम हो, उसे पूरे मनोयोग से करती है, और कभी भी अपनी ताकत व्यर्थ खर्च नहीं करती।
- चींटियां समूह में काम करती है। समूह यानी साझा शक्ति के इस्तेमाल से और भी ज्यादा हासिल करना।
- चींटियां विनम्रता से अपने लीडर द्वारा बताए रास्ते पर चलती है–विनम्रता शक्ति है, कमजोरी नहीं।

- साथ मिलकर वे बांबियां खड़ी कर लेती हैं। ये बांबियां इंजीनियरिंग का बेहतरीन नमूना हैं, जिनके अंदर हवा आने तक के इंतजाम को ध्यान में रखा जाता है–समूह और सामूहिक बुद्धि।
- एक चेन या शृंखला के रूप में चलती हुई चींटियां आपस में ताल-मेल बनाए रखती हैं, ताकि पीछे वाली चींटियां भी उसी रास्ते पर चले, जिस पर वे खुद बढ़ रही होती हैं। यह बेहतरीन नेटवर्किंग का एक शानदार नमूना है।
- क्या आप अपनी जिंदगी को एक चींटी की तरह संगठित और संतुलित कर सकते हैं? यह थी मेरी सलाह। इसकी व्याख्या करते हुए मैंने कहा कि चींटियों के गुणों से तुलना करते हुए हम खुद से यह भी पूछ सकते हैं–आप खुद को ऐसे ढाल सकते हैं कि अपने परिवार को भी वक्त दे सकें। क्या आप इस तरह से अपनी पत्नी की तारीफ कर सकते हैं कि जिंदगी संवरने लगे? क्या आप यह देख सकते हैं कि लचीलापन ही रचनात्मकता की जननी होता है?

योजनाबद्धता : गर्मियों में, जब हर चीज बढ़िया तरीके से चल रही होती है, तो क्या आप जाड़ों के लिए योजना बनाते हैं? या फिर आप अपनी मौज-मस्ती में डूब जाते हैं?

धैर्य : जाड़ों के कठिन दिनों में, क्या आप अपने अंदर धैर्य के गुण को विकसित कर सकते हैं और मौसमी बदलावों की समझदारी हासिल कर सकते हैं?

हरेक लमहे का आनंद लीजिए : क्या आप हरेक लमहे का पूरा आनंद उठा सकते हैं? आप अपनी खुशी के एक या चंद लमहों को हमेशा बनाए रखने की चाहत के बजाय क्या पूरी तरह वर्तमान का मजा ले सकते हैं?

वचनबद्धता : क्या आप वर्तमान पर अपना पूरा ध्यान लगाते हैं? क्या आप हरदम अपने सबसे बढ़िया से भी ज्यादा अच्छा काम करने को तैयार रहते हैं और क्या हर चीज को पूरी लगन के साथ करने की आदत डाल सकते हैं?

समूह : क्या आप अपने 'मैं' को छोड़कर 'हम' से अपने काम की शुरुआत कर सकते हैं और अपने परिवार को एक समूह बना सकते हैं?

विनम्रता : क्या आप नियमों के साथ रुख बदल देने वाली शक्तियों की तरह बर्ताव करने के बजाय विनम्रता के साथ इन नियमों का पालन कर सकते हैं? क्या आप अनुशासन को अपने विकास का एक औजार बना सकते हैं?

नेटवर्किंग क्षमता : क्या आप किन्हीं ऊंचे लक्ष्यों को पूरा करने के लिए लोगों के साथ बेहतर संबंध बना सकते हैं?

इन सिद्धांतों का पालन कीजिए और खुद इनके नतीजों को ही बोलने दीजिए।

क्या आपने सफलतापूर्वक चींटियों की बांबी बना ली है? ओह! मेरे मन, शांत हो जाओ और संतुलन तथा शांति पैदा करने के लिए तनावमुक्त रहो। इस तरह से अपने संघर्षों को ईमानदार बनाइए। ❐

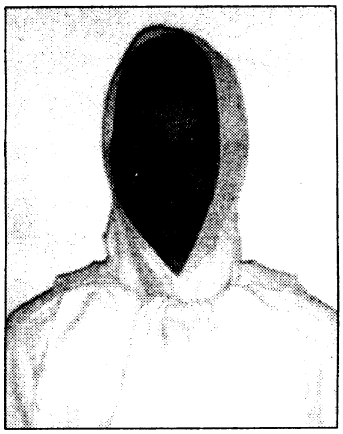

साध्वी विशद चेतनाश्री की विशद चेतना को नमन

डॉ. समणी नियोजिका ऋजुप्रज्ञा

गुरुदेव श्री तुलसी ने सन् 1980 लाडनूं चतुर्मास में साधु और गृहस्थ के मध्य एक तीसरी श्रेणी समणश्रेणी की स्थापना कर तेरापंथ धर्मसंघ के इतिहास में एक अभिनव पृष्ठ जोड़ा। 16 जुलाई, 2014 को परम श्रद्धेय आचार्य महाश्रमणजी ने समणी विशद प्रज्ञा को साध्वी विशद चेतनाश्री बनाकर समण श्रेणी के इतिहास में एक अपूर्व पृष्ठ का सृजन किया।

13 अक्टूबर, 1980 गंगाशहर में जन्मी और विराटनगर (नेपाल) में पली-पुसी चार बहिनों और दो भाइयों की लाडली वीणा को पिता संपतलालजी पुगलिया ने डॉक्टर बनाने की भावना से बी.एससी. प्रथम वर्ष में प्रवेश दिलाया। साइंस विभाग में पहले दिन ही मेढक काटने की प्रक्रिया को देखकर वीणा का पापभीरु हृदय विचलित हो गया। इस निमित्त से उसके प्रसुप्त वैराग्य का बीज अंकुरित हो उठा। घर आते ही घोषणा कर दी—न मुझे साइंस पढ़नी है, न मुझे डॉक्टर बनना है, न मुझे शादी करना है और न मुझे घर में ही रहना है। मुझे तो पारमार्थिक शिक्षण संस्था में प्रवेश लेकर मुमुक्षु बनना है।

संकल्प के अनुसार सन् 1999 में बहिन वीणा मुमुक्षु वीणा बन गई। डेढ़ वर्ष तक संस्था में साधना की और 2001 के गंगाशहर चतुर्मास में मुमुक्षु वीणा अपनी बड़ी बहिन श्वेता (समणी श्रेयसप्रज्ञा) के साथ आचार्य महाप्रज्ञजी के कर-कमलों से दीक्षित होकर समणी विशदप्रज्ञा बन गई।

तेरह वर्ष तक समण श्रेणी में अच्छी साधना की। जीवन विज्ञान विषय में जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय से एम.ए. तक अध्ययन किया। अमेरिका, लंदन, सिंगापुर, मलेशिया, इण्डोनेशिया, दुबई एवं भारत के विविध प्रांतों में यात्राएं कीं। शालीन, उत्साही, मृदुभाषी, बोलने व पढ़ने-पढ़ाने की कला में निष्णात, पापभीरु, निर्जरार्थी समणी विशद प्रज्ञाजी जिनके भी साथ रही, सबके बीच अपनी प्रभावी पहचान बनाई। संघ-

श्रद्धानत है
उस विशद चेतना के प्रति
जिनका
एक ही
लक्ष्य था
जीऊं तो संयम से
मरूं तो समाधि से

जैन भारती, परिवार

संघपति के प्रति सर्वदा समर्पित रहकर अपने लक्ष्य को पाने में गतिशील बनी रही।

सन् 2010 में उनके जीवन में वेदना ने नया मोड़ ला दिया। कैंसर जैसी बीमारी की चपेट में आ गई। उस असह्य वेदना में भी उनकी समता, प्रफुलित चेहरा, विधायक सोच, सहन करने की कटिबद्ध मनःस्थिति सामने वाले को अनायास एक प्रेरणा देती रहती थी। इन चार वर्षों के दौरान चिकित्सा के अनेक पड़ाव उनके सामने आए, पर उनका संकल्प रहा–मैं संघ की इतनी सेवा ले रही हूं। मुझे स्वस्थ होकर संघ की सेवा करनी है, पर नियति को यह मंजूर नहीं था। अंततः यही बीमारी उनकी आत्म चिकित्सा का निमित्त बन गई।

श्रेणी आरोहण और अनशनपूर्वक समाधिमरण के भाव उनके रोम-रोम में रमे हुए थे। संकल्प और भावना के अनुरूप ही गुरुदेव की कृपा से परिस्थितियां बनती चली गईं और उनकी अंतिम भावना सफल बनी।

14 जुलाई की रात को बारह बजे के आस-पास उनके स्वास्थ्य की स्थिति अचानक गिरने लगी। समणी श्रेयसप्रज्ञा, समणी अमलप्रज्ञा एवं उनकी संसारपक्षीया बहिन वंदना उनके पास में थे। स्थिति को नाजुक देखते हुए उन्होंने जप सुनाना शुरू किया। लगभग प्रातः चार बजे के आस-पास मैं उनके पास गई। त्याग-प्रत्याख्यान, संथारे की बात कही, पर मूर्च्छा के कारण इस संदर्भ में उनकी तरफ से कोई संकेत नहीं मिल पाया। 15 जुलाई के दिन तिविहार सागारी प्रत्याख्यान का क्रम चलता रहा। दिन-रात जप-स्वाध्याय का क्रम चलता रहा। सुबह होते-होते स्थिति और नाजुक हो गई। पूज्यप्रवर की दृष्टि प्राप्त कर और समणी विशदप्रज्ञाजी से तीन बार संकेतों से स्वीकृति प्राप्त कर 16 जुलाई को प्रातः 6 बजकर 10 मिनट पर उन्हें यावज्जीवन के लिए तिविहार संथारे का प्रत्याख्यान करवा दिया गया। तत्काल गुरुदेव ने उन्हें संदेश प्रदान करवाया।

समणी विशदप्रज्ञाजी की अंतिम भावना (श्रमण-दीक्षा) पूर्ण करने हेतु गुरुदेव को निवेदन किया। गुरुदेव की असीम कृपा दृष्टि ने उनकी भावना को पूर्ण करने हेतु लाडनूं में विराजित मुनि विजयराजजी, मुनि मोहनलालजी व मुनि हिमांशुकुमारजी को श्रेणी आरोहण के कार्य को यथाशीघ्र संपन्न कराने की तथा साध्वी दीक्षा के बाद उनका नाम साध्वी विशद चेतनाश्री रखवाने हेतु दृष्टि प्रदान करवाई। हम इस कार्यक्रम को यथाशीघ्र संपन्न करवाने हेतु अपेक्षित व्यवस्था कर ही रहे थे कि अचानक श्वासों की गति धीमी होने लगी। हम सब समणिवृंद तत्काल उनके पास पहुंच गईं। मुनिश्रीजी को यथाशीघ्र पधारने के लिए निवेदन करवाया। तीव्रता से चलते हुए मुनि हेमंत कुमारजी यथाशीघ्र वहां पधार गये। 9 बजकर 10 मिनट पर उन्होंने सामायिक पाठ का उच्चारण किया, चौविहार संथारे का प्रत्याख्यान करवाया। मैंने कहा–विशद प्रज्ञाजी! गुरुदेव ने आपको साध्वी विशद चेतनाश्री नाम प्रदान करवाया है। उस समय उनकी आंखें पूरी खुली हुई थीं, चेहरे पर प्रसन्नता झलक रही थी, होंठों पर सहज मुसकान थी, क्योंकि उनके सारे मनोरथ जो पूरे हो रहे थे। हम सबके देखते-देखते 9 बजकर 12 मिनट पर साध्वी विशद चेतनाश्री व्यापक चेतना के आकाश में विलीन हो गयी। नश्वर शरीर से संबंध तोड़ गयी। मुनिश्री विजयराजजी, मुनिश्री मोहनलालजी शार्दूल, मुनिश्री हिमांशुकुमारजी आदि संत भी पधार गये। साध्वी कल्पनाश्रीजी और साध्वी दीपयशाजी भी समय पर पहुंच गईं। नश्वर शरीर के वोसिरे-वोसिरे की रस्म के साथ जैन विश्वभारती के प्रांगण में जीवन का एक अध्याय समाप्त हो गया।

'धुणइ कम्मरयं' आगम सूक्ति की प्रकृष्ट साधना कर साध्वी विशद चेतनाश्री ने पंडितमरण का वरण किया। समता और सहिष्णुता की विशद चेतना उनके चैतन्य में सदा प्रज्वलित रही। उन्होंने वेदना सही तो इतनी कि देखने वाला विह्वल हो उठता मगर वह किसी को एहसास तक नहीं होने देती, उनकी नन्ही-सी मुसकान धर्म की जीवंत प्रेरणा बन गई। समणी विशदप्रज्ञाजी ने मृत्यु को उत्सव बना दिया और मरकर भी समण श्रेणी को अमर बना गईं। उस दिव्यात्मा को शत-शत श्रद्धांजलि! ❐

एक सवाल खुद से

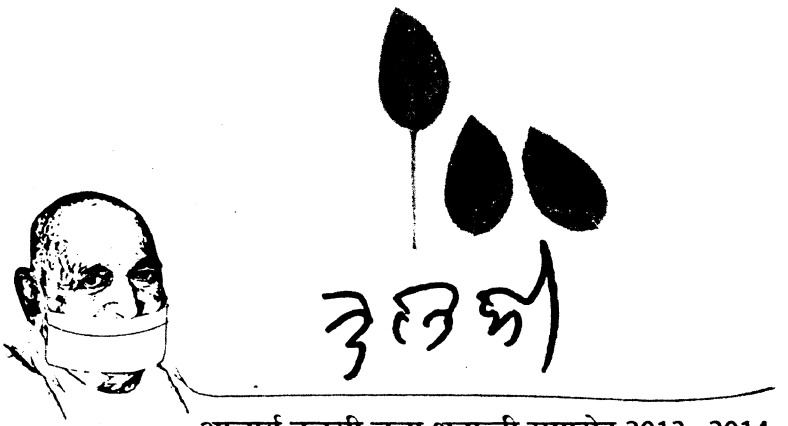

आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह 2013 - 2014

आचार्य तुलसी की जन्म शताब्दी का निर्णीत समय तेजी के साथ बीत रहा है। कल की सी बात लगती है। आचार्य तुलसी के कर्तृत्व और नेतृत्व की उपलब्धियों को सार्थक संयोजना के साथ अमिट बनाने के लिए आचार्य महाश्रमणजी ने जन्म शताब्दी मनाने का आह्वान किया था। उन्होंने स्वयं सौ महाव्रती बनाने का एक महायज्ञ शुरू किया, जो अब पूरा होने को है। इस अवसर पर हमने भी कुछ सपने देखें, संकल्प लिए और उन्हें पूरा करने के लिए पुरुषार्थ कर पसीना भी बहाया। यह गर्व की बात है कि श्रावक समाज ने अपनी भूमिका पर, अपनी अधिकार सीमा में अनेक योजनाएं शुरू कीं, पर क्या इतना कुछ करने के बाद भी हम अपने आपसे यह प्रश्न पूछने का साहस कर सकेंगे कि हमने अपने लिए ऐसा क्या किया, जो हमारे जीवन की दिशा बदल दे?

बच्चों में कौन-से ऐसे संस्कारों के बीज बोएं जिन्हें हम आचार्य तुलसी के जीए गए सपने और परंपराएं सौंपकर जा रहे हैं? ऐसा क्या किया कि युवा पीढ़ी हर कदम पर मील का पत्थर मान सही दिशा चुने? कौन-से ऐसे आदर्श स्थापित किए, जो बैसाखी बनकर बूढ़ों को जीवनभर सुख-शांति और समाधि से जीने का आश्वासन दे सके?

प्रश्नों की भीड़ इर्द-गिर्द लगी है। हमने क्या किया और क्या होना चाहिए था, इस पर कभी विचार किया? अवसर पाकर भी जो नहीं कर सके, वे भला कैसे सुखद परिणामों का फल पा सकेंगे। बिना बीज बोए कोई कैसे फसल की संभावना करेगा। जरूरत है समाज और संघ की हर कड़ी, हर व्यक्ति आचार्य तुलसी को जाने, सिर्फ गुरु के रूप में ही नहीं बल्कि हमसे वो क्या चाहते थे? उनके मन में समाज विकास का क्या सपना था? कैसी श्रावकों की गौरवशाली परंपरा और पीढ़ियां देखना चाहते थे? उनके चिंतन में हमारी जीवन शैली कैसी थी? कैसी संस्कृति को जीने की तैयारी चाहते थे? एक क्षण थमकर सोचें–क्या ऐसा नया करें जो हमारे संस्कारों की नींव को सौ साल और जीने का आश्वासन दे जाए, क्योंकि यह सोच, समीक्षा, सुधार और संशोधन हमारे निष्ठाशील मन का पहला दायित्व है?

उन्होंने जीवनभर इतना बोला कि उनके प्रवचन हर आदमी के लिए दिशा-यंत्र बन गए। इतना काम किया कि काम का हर तौर तरीका हमारे लिए रोशनी दे गया। स्वस्थ समाज और स्वस्थ परंपराओं की दीर्घजीविता के लिए प्रगति का हर दरवाजा खोलकर आगे बढ़ने का मन में विश्वास जगा दिया। संस्कार और संस्कृति के मूल्य-मानकों की सुरक्षा सीमा बता गए। इतना सबकुछ किया। आखिर किसके लिए? सिर्फ हमारे लिए कि हम सुख, शांति और समाधि का जीवन जीना सीख लें। अनावश्यक प्रदर्शन से बचें। संयम और सादगी से जीवन को व्यवस्थित कर आने वाले जागतिक और सांस्कृतिक थपेड़ों से खुद को और अपनी पीढ़ियों को बचा सकें।

हम समस्याओं का समाधान खोज सकें–चाहे पारिवारिक रिश्तों की टूटन हो, चाहे सामाजिक-साधर्मिक बिखराव हो, चाहे जीवनशैली के रंग-ढंग हो, चाहे शादी-विवाह के खर्चीले आयोजन हो, चाहे परंपराओं के बदलते मुखौटे हो या फिर बदलती हमारी सोच हो। हम कहां खड़े हैं और सोच की दिशा किस ओर मुड़ रही है? तेजी से सौ साल की उपलब्धियों का आधार सहेजकर रखना है। तुलसी का नाम मंत्राक्षर है, पर उनके दिए गए जीवन-सूत्र जीवन का आधार हैं। आज नहीं तो फिर कब समझेंगे अपना दायित्व, अपना कर्तव्य, अपना अधिकार और अपने होने की अस्मिता?

समस्या यह नहीं है कि जानते-समझते हुए भी हम पानी का बहाव अपनी ओर आने दें। उस प्रवाह को बदलना जरूरी है, यदि हम सुरक्षा चाहते हैं। समय रहते यदि हम कुछ अच्छा करने से चूक गए तो आने वाली पीढ़ियां कभी माफ नहीं करेंगी। दायित्व जितना अपने प्रति है, परिवार के प्रति है, व्यवस्था के प्रति है, उतना ही संघ और समाज के प्रति। संघ की सुरक्षा सिपाही बनकर श्रावक, कार्यकर्ता का कर्तव्य है कि वह सामाजिक विकृतियों को निर्भीकता के साथ रोके, क्योंकि समाज के दर्पण में ही हमारा अपना सौंदर्य निखरता है। युवापीढ़ी को शिक्षा के लिए खुला आसमां मिला है मगर जमीं पर पैर जमाकर खड़ा रहना तो हमें ही सिखलाना पड़ेगा। छोटी-छोटी बातों पर गुरुदेव प्रशिक्षण देते थे–कैसे बोलें? कैसे बैठें? कैसे चलें? कैसे खाएं? कैसे सोएं? कैसे जीएं? क्या उन छोटी-छोटी बातों में छिपा निर्माण का वह अमर संदेश इस अवसर पर हमें जागरूक नहीं करेगा?

अपने घर के सिवाय भी एक घर और है, जिसे संघ और समाज कहते हैं। जहां हमारी पहचान होती है। हमारे विकास का कद मापा जाता है। हमारे ऊपर आंखें टिकती हैं। कभी-कभी अंगुली भी उठती है। जो बाहर है, उसका भीतर प्रभाव पड़ता है, इसलिए आज और अब पहला संकल्प यह लें कि हम अपने आस-पास सावधानियां रखनी शुरू करेंगे।

जन्म शताब्दी तो सिर्फ एक बहाना है स्वयं की क्षमताओं को प्रमाणित करने का। वक्त के साथ यह साल तो गुजर जाएगा पर सवाल यह है कि इसने किन रास्तों को राजमार्ग बनाया, जिन पर आदमी अभय और साहस के साथ चल पड़े। ऐसे कौन-से पदचिह्न छोड़ कर जाएगा, जो मील के पत्थर बनकर हमें सही दिशा दिखाते रहेंगे। कौन-से ऐसे कार्य चिरस्थायी रहेंगे, जो व्यक्ति, समाज और संघ को सालों तक कुछ होने का एहसास देते रहेंगे।

विकास का यह दौर कभी नहीं रुकना चाहिए। अंधेरों से लड़ने के लिए एक दीया काफी होता है, पर आज दीए से दीया जलाने की नई परंपरा को भी जन्म देने की जरूरत है। आज व्यक्ति क्रांति के साथ सामूहिक विचार क्रांति की भी जरूरत है। इस सोच को बदलने की आवश्यकता है कि हम क्या करें? अब तो ऐसा ही चलेगा? बदलना जरूरी है, पर बदलाव दूसरे से नहीं, खुद से शुरू करें तभी हम औरों को कुछ कहने के हकदार बनेंगे।

गुरुदेव तुलसी को मनाने के लिए भले विशाल समारोह, ऐतिहासिक स्मृति-ग्रंथ, प्रेरणादायी रथयात्रा, प्रभावी प्रदर्शनी, अणुव्रत संकल्प-पत्र की संयोजनाएं हों मगर इससे भी ज्यादा जरूरी है प्रूफ रीडिंग की तरह हम स्वयं को, हमारे आस-पास को देखें, क्योंकि वर्तनी की एक नन्ही-सी भूल भी अर्थ का मकसद खो देती है।

–संपादक

विनोद बैद, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

VAB VENTURES

Leadership with Trust...

VAB Ventures Ltd.

60 B Chowringhee Road, Suite : 3/2/1, 3rd Floor
KOLKATA 700020, West Bengal, India
Tel. : (+91) 3322900112-114 | Fax : (+91) 3322900115
E-mail : arihantbaid@vabventures.in, www.vabventures.in

Sugar ◆ Pharmaceuticals ◆ Biotech ◆ Real Estate ◆ Financial Services ◆ Education ◆ Infotech

जैन भारती, अगस्त, 2014 ■ प्रेषण दिनांक 28 जुलाई, 2014
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन

बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779
नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।